मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 38 • वर्ष 4 • अंक 11 • जनवरी 2015 • पाँच रुपये • 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

लुधियाना में बलात्कार व क़त्ल काण्ड के ख़िलाफ़ विशाल लामबन्दी 8–9

जानलेवा है पूँजीवादी विकास : औद्योगिक कचरे से भूजल और नदियाँ हुईं ज़हरीली 7

इस बार केजरीवाल और 'आप' वाले ठेका मज़दूरों का मुद्दा क्यों नहीं उठा रहे हैं? 16

पूँजीवादी नंगी लूट के विरोध को बाँटने-तोड़ने के लिए साम्प्रदायिक खेल शुरू!

'अच्छे दिनों' के भरम से बाहर निकलो – आने वाले कठिन दिनों के संघर्षों के लिए ख़ुद को तैयार करो!

सम्पादक मण्डल

नये साल की शुरुआत नरेन्द्र मोदी ने देशी-विदेशी पूँजीपतियों के स्वागत में कुछ और लाल गलीचे बिछाने से की। मौका था 'वाइब्रेंट गुजरात' और 'प्रवासी भारतीय सम्मेलन' का। गुजरात में आयोजित इन दोनों सम्मेलनों में पूँजीपतियों को लुभाने के लिए मोदी ने उनके सामने ललचाने वाले व्यंजनों से भरा पूरा थाल बिछा दिया – आओ जी, खाओ जी! श्रम क़ानूनों में मालिकों के मनमाफिक बदलाव, पूँजीपतियों के तमाम प्रोजेक्टों के लिए किसानों-आदिवासियों से ज़मीन हड़पने का पूरा इन्तज़ाम, कारख़ाने लगाने के लिए पर्यावरण मंज़ूरी फटाफट और बेरोकटोक करने की सुविधा, तमाम तरह की सरकारी बन्दिशों और जाँच-पड़ताल से पूरी छूट, सस्ते से सस्ता बैंक ऋण और टैक्सों में छूट। यानी 'ईज़ ऑफ़ बिज़नेस' (बिज़नेस करने की आसानी)! 26 जनवरी को मुख्य अतिथि बनकर आ रहे साम्राज्यवादी लुटेरों और हत्यारों के सबसे बड़े सरगना अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा की यात्रा से पहले बीमा क़ानून से लेकर भूमि अधिग्रहण क़ानून तक अध्यादेशों के ज़रिये बदल दिये गये हैं ताकि विदेशी लुटेरों को भरोसा दिलाया जा सके कि हिन्दुस्तान के लोगों की मेहनत और यहाँ के प्राकृतिक संसाधनों को लूटने में उनकी राह में कोई रुकावट नहीं आने दी जायेगी।

मोदी सरकार के पिछले सात महीने जनता के बुनियादी अधिकारों की कीमत पर देश के शोषक वर्गों के हितों को सुरक्षित करने और उन्हें तमाम तरह से फायदे पहुँचाने के इन्तज़ाम करने में ही बीते हैं। आम अवाम के लिए 'अच्छे दिन' न आने थे और न आये, लेकिन अपने पूँजीपति आकाओं को अच्छे दिन दिखाने में मोदी ने कोई कसर नहीं उठा रखी। मज़दूरों और ग़रीबों की बात करते हुए सबसे पहला हमला बचे-खुचे श्रम अधिकारों पर किया गया। पहले राजस्थान सरकार ने घोर मज़दूर-विरोधी श्रम सुधार लागू किये और उसी तर्ज़ पर केन्द्र में श्रम क़ानूनों में बदलाव करके मज़दूरों के संगठित होने तथा रोज़गार सुरक्षा के जो भी थोड़े अधिकार कागज़ पर बचे थे, उन्हें भी निष्प्रभावी बना दिया। योजना आयोग को ख़त्म करके बने नीति आयोग का उपाध्यक्ष जिन अरविन्द पनगढ़िया को बनाया गया है वे ही राजस्थान की भाजपा सरकार के श्रम सुधारों के मुख्य सूत्रधार रहे हैं। पनगढ़िया महोदय सारा जीवन अमेरिका में रहकर साम्राज्यवादियों की सेवा करते रहे हैं और खुले बाज़ार अर्थव्यवस्था तथा श्रम सम्बन्धों को 'लचीला' बनाने के प्रबल पक्षधर हैं। इससे पहले मुक्त बाज़ार नीतियों के एक और पैरोकार अरविन्द सुब्रमण्यन को प्रधानमंत्री का मुख्य आर्थिक सलाहकार नियुक्त किया जा चुका है। जो बात हम 'मज़दूर बिगुल' के पाठकों के सामने बार-बार रखते आ रहे हैं वह अब बिल्कुल साफ हो चुकी है। मोदी सरकार के तमाम पाखण्डपूर्ण दावों के बावजूद सच यही है कि यह उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों को मनमोहन सरकार से भी ज़्यादा ज़ोरशोर से लागू करेगी और इनसे मचने वाली तबाही के कारण जनता के असन्तोष को बेरहमी से कुचलेगी तथा लोगों को आपस में लड़ाने के लिए साम्प्रदायिक फासीवादियों के हर हथकण्डे का इस्तेमाल करेगी।

एनडीए की सरकार बनने के पहले देश की जनता को तमाम गुलाबी सपने दिखाये गये थे। दावा किया गया था कि महँगाई और बेरोज़गारी की मार को ख़त्म किया जायेगा; पेट्रोल-डीज़ल से लेकर रसोई गैस की कीमतें घटेंगी, रेलवे भाड़ा नहीं बढ़ाया जायेगा; भ्रष्टाचार दूर होगा और विदेशों इतना से काला धन वापस लाया जायेगा कि हर आदमी के बैंक में लाखों रुपये पहुँच जायेंगे! लेकिन पिछले सात महीनों में ही देश की आम मेहनतकश जनता को समझ आने लगा है कि किसके "अच्छे दिन" आये हैं! रसोई गैस की कीमतें और और रेल किराया बढ़ चुका है, खाने-पीने की चीज़ों के दाम आसमान छू रहे हैं। श्रम क़ानूनों से मज़दूरों को मिलने वाली सुरक्षा को छीना जा चुका है, तमाम पब्लिक सेक्टर की मुनाफ़ा कमाने वाली कम्पनियों का निजीकरण किया जा रहा है, जिसका अंजाम होगा बड़े पैमाने पर सरकारी कर्मचारियों की छँटनी। ठेका प्रथा को 'अप्रेण्टिस' जैसे नये नामों से बढ़ावा दिया जा रहा है। पेट्रोलियम उत्पादों की अन्तरराष्ट्रीय कीमतें आधी हो जाने के बावजूद मोदी सरकार ने तमाम टैक्स और शुल्क बढ़ाकर उसकी कीमतों को ज़्यादा नीचे नहीं आने दिया है। विदेशों से काला धन वापस लाने को लेकर तरह-तरह के बहाने बनाये जा रहे हैं और देश में काले धन को और बढ़ावा देने के इन्तज़ाम किये जा रहे हैं। रुपये की कीमत में रिकार्ड गिरावट के चलते महँगाई और ज़्यादा बढ़ रही है।

(पेज 14 पर जारी)

मुनाफ़े की व्यवस्था में बेअसर हो रही जीवनरक्षक दवाएँ

डॉ. अमृत

आधुनिक स्वास्थ्य प्रणाली का एक बहुत अहम हिस्सा रोगाणु-रोधक दवाएँ (ऐण्टीबायोटिक्स) जिस तरह बे-असर होने की तरफ़ बढ़ रही हैं, उसके भयानक नतीजे अब स्पष्ट दिखायी देने लगे हैं और इसके बारे में अब विश्व स्तर पर चर्चा होनी शुरू हो चुकी है। इसका सीधा सम्बन्ध मुनाफ़े पर टिके इस समाजिक ढाँचे से है।

भारत में एक बड़ी बीमारी चुपचाप पैर पसार रही है जिसका कारण ऐसे बैक्टीरिया की किस्मों का बड़ी संख्या में सामने आना है, जिन पर रोगाणु-रोधक दवाओं का या तो बिल्कुल ही कोई असर नहीं होता या फिर बहुत कम दवाओं का ही असर होता है और जब तक सही दवा का पता लगता है, तब तक रोगी की हालत पहले ही लाइलाज हो चुकी होती है या उसकी मृत्यु हो जाती है। एक ताज़ा रिपोर्ट के अनुसार इसका सबसे भयानक प्रभाव नवजात बच्चों में दिखायी दे रहा है। भारत में हर वर्ष आठ लाख नवजात बच्चे किसी न किसी कारण मौत के मुँह में चले जाते हैं। पिछले वर्ष इन आठ लाख बदकिस्मत बच्चों में से 58,000 बच्चे ऐसे बैक्टीरिया का शिकार हुए जिन पर रोगाणु-रोधक-दवाओं का कोई प्रभाव नहीं हुआ, और कभी पूरी तरह इलाजयोग्य रही बीमारियाँ लाइलाज बन गयीं। चाहे फ़िलहाल यह संख्या नवजात बच्चों की कुल मौतों का बहुत छोटा हिस्सा प्रतीत होती है, परन्तु डॉक्टरों के अनुसार यह संख्या तेज़ी से बढ़ सकती है, क्योंकि भारत में वे सभी हालात मौजूद हैं जो ऐसे बैक्टीरिया के बहुत तेज़ी से फैलने के लिए अनुकूल माहौल मुहैया करवाते हैं।

प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी चाहे 'स्वच्छ भारत' के जितने मर्ज़ी तमाशे करें, परन्तु वास्तविकता यह है कि आधी से अधिक आबादी के पास आधुनिक तो क्या, साधारण बोर-होल पाखाने की सुविधा भी नहीं है। नतीजा, भारत के पानी के स्रोत, खेत, सिवरेज आदि रोगाणु-रोधक दवाओं को बे-असर करने वाले बैक्टीरिया से भरे हुए हैं। आबादी के बड़े हिस्से को रहने के लिए ज़रूरत की जगह भी नहीं मिलती, कम जगह में बहुत ज़्यादा लोगों के रहने के कारण मनुष्य से मनुष्य के दरमियान भी बैक्टीरिया तेज़ी से फैलते हैं। रिहायशी स्थानों के साथ-साथ अस्पताल, ख़ासकर सरकारी अस्पताल भी भीड़-भड़क्के वाले स्थान बन गये हैं। सरकारें एक तरफ़ अस्पतालों में प्रसव को बढ़ाने के लिए नक़द प्रोत्साहन दे रही हैं, परन्तु अस्पतालों की सामर्थ्य बढ़ाने की तरफ़ उन का कोई भी ध्यान नहीं है, क्योंकि हमारे नेताओं और नीति-निर्माताओं को लगता है कि अस्पताल में प्रसूति कराने के लिए कुछ रुपयों की नक़द राशि देकर उनकी ज़िम्मेदारी ख़त्म हो जाती है। अस्पतालों में बिस्तर ही पूरे नहीं हैं, एक-एक बिस्तर पर दो-दो

पेज 10 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

रिको ऑटो मज़दूरों की कहानी!

'रिको ऑटो' यह कम्पनी (दिल्ली-जयपुर हाईवे) गुड़गाँव के 38 माइन स्टोन खटोला गाँव में स्थित है। इस कम्पनी के मालिक का नाम अरविन्द कपूर है। यह कम्पनी देशी-विदेशी ऑटोमोबाइल कम्पनियों के पार्ट्स-पुर्जे बनाती है। रिको ऑटो कम्पनी के भारत के कई राज्यों में लगभग 8 से 10 प्लाण्ट हैं। (जैसे – चेन्नई, हरिद्वार, गुड़गाँव, मानेसर, धारूहेड़ा, बावल, लुधियाना आदि।) इस कम्पनी में लगभग 2500 मज़दूर काम करते हैं। जिसमें 1000 के आसपास स्थाई मज़दूर हैं, बाक़ी सभी ठेका, ट्रेनी व कैजुअल मज़दूर हैं। स्थाई मज़दूरों को छोड़कर बाक़ी सभी मज़दूर अधिकतर हरियाणा ग्रेड 5640 रुपये पर ही भर्ती होते हैं व कुछ आईटीआई किये मज़दूरों को थोड़ा ज़्यादा 6500-7000 रुपये मिलता है। इस कम्पनी का एक साल का टर्नओवर लगभग एक हज़ार करोड़ रुपये है।

रिको के गुड़गाँव प्लाण्ट के मज़दूरों ने तनख़्वाह बढ़ाने व यूनियन बनाने के लिए सितम्बर 2009 में आन्दोलन की शुरुआत की और इस आन्दोलन ने काफ़ी उग्र रूप धारण किया व इसी आन्दोलन में अजीत यादव नाम के मज़दूर की मृत्यु हुई। जिसका कारण कम्पनी मैनेजमेण्ट और बाउंसरों द्वारा हड़ताली मज़दूरों पर अचानक किया गया हमला था। अजीत यादव की मृत्यु के बाद पूरे गुड़गाँव के लगभग एक लाख से ज़्यादा मज़दूर स्वत:स्फूर्त तरीक़े से रिको के मज़दूरों के समर्थन में पूरे हाईवे पर जमा हो गये। (इस घटना की ख़बरें उस समय के समाचारपत्रों व न्यूज़ चैनलों पर लगातार आ रही थीं) इस घटना की ख़बर देश व दुनिया के मज़दूरों को होने लगी। कम्पनी मैनेजमेण्ट व सरकारी तन्त्र मज़दूरों की एकता से दहल उठा। और उस स्वत:स्फूर्त घटना ने यह साबित कर दिया कि मज़दूरों की समस्याएँ चाहे जितनी हों मगर हम मज़दूर एक वर्ग के रूप में एकजुट होकर रहेंगे। और इसके बाद तथाकथित बहुत बड़ी केन्द्रीय ट्रेड यूनियन एटक के नेता गुरूदास गुप्ता ने अपनी नौटंकी करते हुए कम्पनी से 5 किलोमीटर पहले ही टोल प्लाज़ा पर अपनी गिरफ़्तारी दे दी। साफ़ है केन्द्रीय ट्रेड यूनियन की आपसी होड़ की वजह से लाखों मज़दूरों का आन्दोलन सही दिशा नहीं ले पाया।

ख़ैर मज़दूरों की इस वर्ग एकजुटता के आगे कम्पनी मैनेजमेण्ट को झुकना पड़ा। मृत मज़दूर अजीत यादव के घरवालों को सम्मानजनक मुआवज़ा मिला। हम मज़दूरों की 4 हज़ार रुपये वेतन में बढ़ोत्तरी हुई लेकिन साथ ही कम्पनी मैनेजमेण्ट ने मालिकों की तलवे चाटने वाली एक जेबी ट्रेड यूनियन गठित करा दी। और उसके बाद 2009 से आजतक लगभग 300 मज़दूरों को निकाला जा चुका है। ठेकेदार के मज़दूर व कैजुअल मज़दूरों की तो कोई गिनती ही नहीं होती। अब मालिक व मैनेजमेण्ट की नीति यह है कि हाईवे के किनारे की यह ज़मीन बिल्डरों के हाथों सोने के भाव बेच दी जाये। और स्थाई मज़दूरों की जगह पर ठेका मज़दूरों की फ़ौज को गुलामों की तरह खटाकर मुनाफ़ा पीटा जाये। जैसे आज पूरे ऑटो मोबाइल सेक्टर में किया जा रहा है।

– रिको का एक मज़दूर

मानवीय श्रम

मज़दूरों के मेहनत करने की ताक़त
या यूँ कहें कि मानवीय श्रम
दुनिया का हर काम कर सकता है
मानवता को नयी उड़ानों पर ले जा
सकता है
वो पहाड़ों को चीर कर
नदियाँ-नहरें, रेल की पटरियाँ बिछा
सकता है
वो धरती को चीर कर
कोयला, अयस्क, धातुएँ व
कई प्रकार के पेट्रोलियम पदार्थ निकाल
सकता है
वो अपने श्रम से रेल, मेट्रो, पानी का
जहाज़
हवाई जहाज़ व रॉकेट बना सकता है।
अगर हमें मौक़ा मिले तो
इस धरती को स्वर्ग बना सकते हैं
मगर बेड़ियाँ से जकड़ रखा है हमारे
जिस्म व आत्मा को इस लूट की
व्यवस्था ने
हम चाहते हैं अपने समाज को
बेहतर बनाना मगर
इस मुनाफ़े की व्यवस्था ने
हमारे पैरों को रोक रखा है
हम चाहते हैं एक नया समाज बनाना।
मगर इस पूँजी की व्यवस्था ने
हमें रोक रखा है
बिखरा दिया है हम सबको बाँट दिया है
एक-दूसरे से हमारे प्यार, हमारी
भावनाओं को
कर दिया है बाज़ार के हवाले
ताकि हम सबकुछ भूलकर
अपने में ही खोये रहे मगर
हम मज़दूर व नौजवान ही है
दुनिया की वो ताक़त
जो बदल सकते हैं इस दुनिया को
बना सकते हैं अपनी इस धरती को स्वर्ग
जैसा
हमें भरोसा करना होगा
अपने संगठित होने पर
हमें बनाना होगा एक नये समाज को
हाँ हमें ही बनाना होगा
एक नये समाज को।

आनन्द, गुड़गाँव

मज़दूर बिगुल यहाँ से प्राप्त करें :

दिल्ली : मज़दूर पाठशाला, बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर (योगेश) 09289498250; वज़ीरपुर (सनी) 09873358124; पीरागढ़ी (नवीन) 08750045975; शहीद भगतसिंह लाइब्रेरी, ए ब्लॉक, शाहबाद डेयरी, फ़ोन – 09971158783
गुड़गाँव : (अजय) 09540436262, (राजकुमार) 09919146445
लुधियाना : मज़दूर पुस्तकालय, राजीव गाँधी कालोनी, फ़ोकल प्वाइण्ट थाने के पास, फ़ोन – 09646150249 ● चण्डीगढ़ : (मानव) 09888808188
लखनऊ : जनचेतना, डी-68, निराला नगर, फ़ोन – 0522-2786782, (सत्यम) 08853093555
गोरखपुर : जनचेतना, 114, जनता मार्केट, रेलवे बस स्टेशन रोड, फ़ोन – 09455920657
इलाहाबाद : (प्रसेन) 08115491369 ● पटना : (विशाल) 09576203525
सिरसा : डॉ. सुखदेव हुन्दल की क्लिनिक, सन्तनगर, फ़ोन – 09813192365
मुम्बई : नारायण, रूम नं. 7, धनलक्ष्मी कोआपरेटिव हाउसिंग सोसायटी, प्लाट नं. बी-6, सेक्टर 12, खारघर, नवी मुम्बई, फ़ोन – 09619039793

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।"
– लेनिन

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।
यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट

www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। हम बिगुल के प्रवेशांक से लेकर अब तक के सभी अंक वेबसाइट पर उपलब्ध कराने के लिए काम कर रहे हैं।

मज़दूर बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी- चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाज़ों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब नहीं मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीआर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण: Mazdoor Bigul
खाता संख्या: 0762002109003787, IFSC: PUNB0076200
पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज शाखा, लखनऊ
सदस्यता: (वार्षिक) 70 रुपये (डाकख़र्च सहित);
(आजीवन) 2000 रुपये
मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं:
फ़ोन: 0522-2786782, 8853093555, 9936650658,
ईमेल: bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक: www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन : 8853093555
दिल्ली सम्पर्क : बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल : bigul@rediffmail.com
मूल्य : एक प्रति – रु. 5/-
वार्षिक – रु. 70/- (डाक ख़र्च सहित)
आजीवन सदस्यता - 2000/-

दिल्ली इस्पात उद्योग मज़दूर यूनियन हुई पंजीकृत

पूरे इलाक़े में मज़दूर हुंकार रैली निकाली गयी

गत 7 ज़नवरी को वज़ीरपुर औद्योगिक इलाक़े में यूनियन पंजीकृत होने के मौक़े पर मज़दूर हुंकार रैली निकाली गयी जिसमें करीब हज़ार मज़दूरों ने भागीदारी कर अपनी एकजुटता का परिचय दिया। गरम रोला के मज़दूरों की हड़ताल से जन्मी यह यूनियन आज पूरी स्टील लाइन के मज़दूरों की यूनियन बन चुकी है। गरम रोला के आन्दोलन में 27 अगस्त की आम सभा में यह तय हुआ था कि ऐसी यूनियन बनानी होगी जो स्टील उद्योग के सभी तरह के काम करने वाले मज़दूरों का प्रतिनिधित्व करे। दिल्ली इस्पात उद्योग मज़दूर यूनियन ऐसी ही यूनियन के रूप में उभरकर सामने आयी। आज इसके सदस्य गरम रोला, ठण्डा रोला, तेज़ाब, तपाई, तैयारी, रिक्शा, पोलिश आदि यानी हर तरह के मज़दूर साथी हैं तथा सदस्यता संख्या में लगातार विस्तार हो रहा है।

और आज तमाम दल्ला ठेकेदारों व मालिकों की लाख कोशिशों के बावजूद गत 24 दिसम्बर को श्रम विभाग नीमड़ी कॉलोनी में यूनियन का पंजीकरण हो गया (पंजीकरण नम्बर F-10/DTRU/NWD/37/14) और इसी मौक़े पर पूरे इलाक़े में रैली निकाली गयी, उसके साथ ही सामूहिक भोजन का आयोजन भी किया गया। सभा राजा पार्क में ही की गयी जिसमें यूनियन के कमिटी सदस्यों ने सभा को सम्बोधित किया।

सभा को सम्बोधित करते हुए यूनियन कमिटी के सदस्य सनी ने अपनी बात में कहा कि वैसे तो मज़दूरों की असली ताक़त सड़क पर ही दिखती है, लेकिन यूनियन का पंजीकरण होने के बाद मज़दूरों के पास श्रम क़ानून तथा विभिन्न मामलों में प्रतिनिधित्व देने वाली अपनी एक ताक़त होगी। मज़दूर तरह-तरह के दल्लों के चक्कर में फँसने की बजाय यूनियन के माध्यम से नि:शुल्क किसी भी तरह की क़ानूनी मदद ले सकेंगे और अपने केस लगा सकेंगे। यूनियन कमिटी सदस्य बाबूराम ने कहा कि यूनियन ने किस्म-किस्म के उन दलालों और 20 प्रतिशत खाने वाले धन्धेबाज़ों का पर्दाफ़ाश भी किया है, जिन्होंने मज़दूरों का नाम लेकर उनकी खून-पसीने की मेहनत को लूटने को ही अपना पेशा बना रखा था। 'खिसियानी बिल्ली खम्भा नोंचे' को चरितार्थ करते हुए इन दलालों और मालिकों के तलवे चाटने वालों ने अपना लाख दम लगाया, लेकिन ये हमारी यूनियन का पंजीकरण नहीं रोक पाये। यूनियन की क़ानूनी सलाहकार शिवानी ने बताया कि यूनियन का पंजीकरण अपने-आपमें ही इन दलालों के मुँह पर एक करारा तमाचा है। यूनियन को कमज़ोर करने की इनकी कोशिशें अब भी जारी हैं। ये दल्ले और इनके आका अब यह बात उड़ा रहे हैं कि यूनियन की वजह से ही इलाक़े में चीन का माल आ रहा है! उन्होंने आगे कहा कि "इनसे पूछा जाना चाहिए कि बिजली का सामान, मोबाइल फ़ोन, खिलौने और बहुत सा सामान भी तो चीन का आ रहा है, क्या वहाँ भी यूनियन हड़ताल करने गयी थी? और क्या यूनियन बनने से बहुत पहले स्टील उद्योग में ही चीन का माल नहीं आ रहा था? असल में विदेशी माल के आने का कारण मालिकों के ही चहेते मोदी की लुटेरी नीतियाँ हैं, जो देश को लूट की चरागाह बनाने पर आमादा है। यदि इस्पात उद्योग के मज़दूर अपनी एकता को बढ़ाते रहे, उसे मज़बूत करते रहे तो हमारी एकता के सामने लुटेरा वर्ग आगे भी मुँह की खाने वाला है।"

इसके अलावा करावल नगर मज़दूर यूनियन, ऑटो मज़दूर संघर्ष समिति, नौजवान भारत सभा और बिगुल मज़दूर दस्ता के प्रतिनिधियों ने भी आयोजन में शिरकत की। विहान सांस्कृतिक टोली के सदस्यों ने क्रान्तिकारी गीतों की प्रस्तुति की। यूनियन की तरफ़ से मज़दूरों के पहचान कार्ड भी जारी हुए, तथा 300 के क़रीब मज़दूरों ने यूनियन की नयी सदस्यता ली।

– बिगुल संवाददाता

वज़ीरपुर में रेलवे ने करीब 40 झुग्गियों पर बुल्डोज़र चढ़ाया

चुनावी पार्टियों ने शुरू की वोटों की फ़सल काटने की तैयारी

16 दिसम्बर की सुबह को दिल्ली पुलिस और रेलवे पुलिस के नेतृत्व में रेलवे ने वज़ीरपुर इंडस्ट्रीयल एरिया, बी ब्लॉक में आज़ादपुर से लगी रेलवे लाइन के करीब बसी 40 झुग्गियों पर बुल्डोज़र चढ़वा दिया। लोगों ने एकजुट होकर ही वहाँ झुग्गियों को आगे टूटने से बचाया। इस कड़ाके की ठण्ड में कई लोगों के घर उजाड़ दिये गये और उनके सपनों को बुल्डोज़र ने ज़मींदोज कर दिया। अवैध का बहाना बनाकर सरकार बिना आवास की सुविधा मुहैया करवाये इन झुग्गियों को नहीं तुड़वा सकती है। टूटी झुग्गियों में निवासियों को रात आग जलाकर काटनी पड़ी। जिसके कारण बच्चों और महिलाओं की तबियत काफ़ी ख़राब हो गयी। इसी कारण दिल्ली इस्पात उद्योग मज़दूर यूनियन ने झुग्गियों में एक मेडिकल कैम्प का आयोजन किया। उस दिन दिल्ली इस्पात उद्योग मज़दूर यूनियन द्वारा आयोजित आम सभा में झुग्गीवासियों की सहमति से

यह निर्णय लिया गया कि इस पूरी घटना का पर्चा निकाला जाये और पूरे इलाक़े में बाँटा जाये। क्योंकि यह सिर्फ़ यहाँ की 40 झुग्गियों का मसला नहीं है बल्कि सारे झुग्गीवासियों का मसला है और सबको एकजुट होकर लड़ने के लिए तैयार रहना होगा। फिर वह चाहे गरम रोला में काम करता हो या ठंडा में या फिर तेज़ाब, तपाई, प्रेस, पोलिश, कॉपर में या रेहड़ी-खोमचा लगाता हो या रिक्शा चलाता हो, झुग्गी की समस्या के लिए पूरे इलाक़े की एकजुटता क़ायम करनी होगी। सिर्फ़ अपनी बारी का इन्तज़ार करने से और पल्ला झाड़ने से काम नहीं चलेगा। इसके साथ ही क़ानूनी कार्यवाही भी जारी है, जिसके तहत 14 जनवरी (केस की तारीख़) तक का स्टेऑर्डर लिया गया है। पर चुनावबाज़ पार्टियाँ यहाँ भी अपनी चुनावी रोटियाँ सेंकने और चेहरा चमकाने आ पहुँचीं। चाहे भाजपा, कांग्रेस, आम आदमी पार्टी हो या नक़ली लाल झण्डे वाली माले जो सिर्फ़ चुनाव के समय ही अवतरित होती हैं – सब इस मुद्दे को भुनाकर अधिक से अधिक वोट पाना चाहती हैं। हमें इन सभी चुनावी मदारियों से सावधान रहना होगा और अपनी जुझारू एकजुटता क़ायम करनी होगी, तभी हम अपने हक़ जीत सकते हैं न कि इन मालिकों की दलाल चुनावबाज़ पार्टियों के चक्कर में फँसकर।

क्यों असफल हुआ अस्ति मज़दूरों का साहसिक संघर्ष?

ऑटो मज़दूर संघर्ष समिति

मानेसर के अस्ति इलेक्ट्रॉनिक्स इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड से निकाले गये 310 मज़दूरों का संघर्ष बिना किसी नतीजे के बिखर गया। अन्त में मज़दूर पक्ष को प्रबन्धन, श्रम प्रशासन और केन्द्रीय ट्रेड यूनियन एच.एम.एस. ने थकाकर एक ऐसे समझौते के लिए बाध्य कर दिया जिसमें निकाले गये मज़दूरों को वास्तव में कुछ नहीं मिला। ज्ञात हो कि पिछले साल 1 नवम्बर को दोपहर 3 बजे कम्पनी प्रबन्धन ने बिना किसी पूर्व सूचना के कम्पनी नोटिस बोर्ड पर 310 ठेका मज़दूरों को नौकरी से निकाल दिया। जिसके बाद निकाले गये मज़दूरों ने प्रतिरोध करते हुए 3 नवम्बर से ही फ़ैक्टरी गेट पर स्थाई धरना देना शुरू कर दिया। निकाले गये 310 मज़दूरों में से 250 महिला मज़दूर थीं। ये सभी मज़दूर पिछले तीन-चार सालों से कम्पनी की मुख्य उत्पादन लाइन स्थाई मज़दूरों से अभिन्न ऑपरेटर का काम कर रहे थे। वेतन देने से लेकर ड्यूटी लगाने का काम मुख्य तौर से कम्पनी प्रबन्धन करता था। लेकिन जब कम्पनी ने मज़दूरों को बाहर का रास्ता दिखाया तो सारा ज़िम्मा तीन ठेका कम्पनियों पर डाल दिया। असल में आज पूरे गुड़गाँव के औद्योगिक बेल्ट की ऑटोमोबाइल सेक्टर की कम्पनियों में मुख्य उत्पादन लाइन पर इस तरह लाखों ठेका मज़दूरों को बेहद कम मज़दूरी पर खटाया जा रहा है जो श्रम क़ानूनों की नज़र में सरासर ग़ैर-क़ानूनी है। लेकिन प्रबन्धन-प्रशासन-सरकार का गठजोड़ सरेआम सभी श्रम-क़ानूनों का उल्लंघन करता है। वहीं दूसरी तरफ़ केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संघ भी ठेका मज़दूरों के मुद्दों पर मुँह पर ताला लगाकर बैठी रहती है। वास्तव में, ठेका मज़दूरों के मुद्दों पर तो केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संघ ठेका मज़दूरों के संघर्ष के ख़िलाफ़ काम करती है। अस्ति के मामले में भी यही हुआ, जहाँ की स्थाई मज़दूरों की कारख़ाना यूनियन समाजवादियों के यूनियन संघ एच.एम.एस. से जुड़ी हुई है। अस्ति कारख़ाने के तमाम स्थाई मज़दूर ठेका मज़दूरों के संघर्ष की मदद करना चाहकर भी नहीं कर पाये, क्योंकि उन्हें एच.एम.एस. ने ऐसा करने ही नहीं दिया। कारख़ाना यूनियन को तमाम क़ानूनी कार्यों के लिए एच.एम.एस. और उसके नेताओं की ज़रूरत पड़ती रहती है जिसके कारण मज़दूर उसकी बात मानने को मजबूर महसूस करते हैं। नतीजतन, अस्ति में ठेका मज़दूरों का संघर्ष अलग-थलग पड़ गया। जुबानी समर्थन तो तमाम यूनियनों और नेताओं ने दिया, लेकिन वास्तविक समर्थन किसी ने नहीं दिया। ऐसे में, ठेका मज़दूर अकेले ही साहस से लड़े।

निश्चित तौर पर, अस्ति मज़दूर आन्दोलन में मज़दूरों ने शानदार बहादुरी का परिचय दिया। इसकी असफलता के पीछे कुछ-कुछ कारण तो वे हैं जोकि आज पूरे ऑटोमोबाइल पट्टी के मज़दूर आन्दोलन के ठहराव का कारण बने हुए हैं। लेकिन इस संघर्ष के इस तरह से समाप्त होने के पीछे श्रम विभाग द्वारा अनसुनी और थकाये जाने की रणनीति, एच.एम.एस. की गद्दारी और प्रबन्धन के अड़ियल रवैये के अलावा, अस्ति मज़दूर आन्दोलन के भीतर सक्रिय उन "इंक़लाबी-क्रान्तिकारी कामरेडों" की अदूरदर्शिता और बचकाना रवैया भी था, जिनके बारे में हम पहले भी लिख चुके हैं और जो अतीत में कुछ और सम्भावनासम्पन्न संघर्षों को असफलता के दलदल में डुबो चुके हैं।

अस्ति मज़दूरों ने छँटनी के बाद फ़ैक्टरी गेट के संघर्ष के साथ ही श्रम-विभाग में भी अपनी शिकायत दर्ज करायी। इसके पश्चात श्रम विभाग ने मज़दूरों को थकाने और निराश करने के लिए तारीख़ पर तारीख़ की नौटंकी चलायी ताकि ठेकेदारों के पास पूरा मौक़ा रहे कि वे मज़दूरों को फ़ोन से और घर-घर जाकर पूरा हिसाब-किताब कर लें। हड़ताल के 20वें दिन मज़दूरों ने आन्दोलन के सलाहकार बने, इंक़लाबी मज़दूरों का केन्द्र होने और क्रान्तिकारी नौजवानों का संगठन होने का दावा करने वाले कुछ राजनीतिक नौबढ़ संगठनों के कहने पर आमरण अनशन शुरू कर दिया। जिसमें 7 मज़दूरों को आमरण अनशन पर बैठा दिया गया। मज़दूर आन्दोलन में सक्रिय कोई भी संगठन या संगठनकर्ता इस बात को जानता है कि आन्दोलन में आमरण अनशन का रास्ता अन्तिम तौर पर निर्णायक दबाव डालने के लिए अपनाया जाता है। उद्वेलन का पहला ही क़दम कभी आमरण अनशन नहीं होता है; बल्कि प्रतीकात्मक भूख हड़ताल, क्रमिक भूख हड़ताल और अनिश्चितकालीन भूख हड़ताल के ज़रिये एक ओर प्रशासन पर निरन्तरता से दबाव बनाने और साथ ही बिरादर मज़दूर आबादी में संघर्ष के लिए हमदर्दी और समर्थन विकसित करने के बाद ही आमरण अनशन का रास्ता अपनाया जाता है। आमरण अनशन को बिना माँगें माने वापस लेना शर्मनाक बात होती है। यही कारण है कि आमरण अनशन उद्वेलन की एक चरणबद्ध प्रक्रिया में अक्सर आख़िरी और निर्णायक चरण में अपनाया जाने वाला क़दम होता है। लेकिन "इंक़लाबी-क्रान्तिकारी कामरेडों" ने अस्ति मज़दूरों के नेतृत्व को यह सुझाव दिया कि आमरण अनशन की शुरुआत कर देनी चाहिए। और नेतृत्व ने भी अदूरदर्शिता दिखलाते हुए इस सुझाव को अपना लिया। नतीजतन, अन्त में बिना माँगों के माने ही आमरण अनशन तोड़ना पड़ा जोकि मज़दूरों के हौसले को पस्त कर गया। इसका ज़िम्मेदार अस्ति मज़दूरों का नवोदित नेतृत्व उतना नहीं था जितना कि "इंक़लाबी-क्रान्तिकारी कामरेडों" का बचकाना और मूर्खतापूर्ण रवैया।

जब मज़दूरों के सब्र का बाँध टूटने लगा तब हड़ताल के लगभग 1 महीने बाद पहली बार अतिरिक्त श्रमायुक्त कार्यालय पर मज़दूरों ने धरना दिया। तब तक मज़दूर कारख़ाने के पास ही बैठे हुए थे, जिसका न तो प्रशासन पर कोई विशेष दबाव पड़ रहा था और न ही प्रबन्धन पर। सही रास्ता यह होता कि मज़दूर अपने विरोध प्रदर्शन, धरने और भूख हड़ताल के स्थान के तौर किसी ऐसे स्थान को चुनते जोकि प्रशासनिक महत्व रखता हो। लेकिन ऐसा किया ही नहीं गया। इसमें भी काफ़ी हद तक इन "इंक़लाबी-क्रान्तिकारी कामरेडों" की रायबहादुरी की काफ़ी भूमिका थी।

अन्त में धरना श्रमायुक्त कार्यालय पर दिया गया लेकिन तब तक कम्पनी प्रबन्धन और ठेकेदारों ने कई मज़दूरों को आन्दोलन से तोड़कर उनका हिसाब-किताब कर दिया था। वैसे भी 1 महीने के संघर्ष में यह बात सामने आ चुकी थी कि गुड़गाँव श्रम विभाग, प्रबन्धन और एच.एम.एस. अस्ति के ठेका मज़दूरों को थकाने का काम कर रहे थे। ऐसे में, अस्ति मज़दूरों के बीच इस बात को लेकर खुलकर विचार-विमर्श होना चाहिए था कि आगे की रणनीति क्या हो। लेकिन "इंक़लाबी-क्रान्तिकारी कामरेडों" ने यहाँ भी वही किया जो इन्होंने मारुति सुजुकी मज़दूर आन्दोलन में किया था, और जो आन्दोलन के पतन का एक कारण भी बना। "क्रान्तिकारी/इंक़लाबी कामरेडों" ने फिर मारुति आन्दोलन की तरह ही सिर्फ़ अस्ति ठेका मज़दूर संघर्ष समिति के मज़दूरों के संघर्ष की भावी रणनीति के बारे में चर्चा को सिर्फ़ कमेटी सदस्य तक ही सीमित रखा और उसे किसी भी क़ीमत पर बाहर नहीं जाने दिया। यानी असल में अपनी ही अहमकाना रणनीति को थोपने का काम किया। और मारुति सुजुकी मज़दूर आन्दोलन की ही तरह इन्होंने यहाँ भी ग़ैर-जनवादी प्रधानी की राजनीतिक संस्कृति को मज़दूरों के बीच स्थापित करने का काम किया। कहने के लिए "क्रान्तिकारी/इंक़लाबी कामरेडों" मज़दूरों की पहलक़दमी की जुबानी बात करते हैं, लेकिन असल व्यवहार में इनकी राजनीति ट्रेड यूनियन अवसरवाद की होती है।

अस्ति मज़दूर आन्दोलन सड़क के संघर्ष और क़ानूनी संघर्ष दोनों रास्ते पर सही क़दम न उठाने की वजह से टूट गया। स्पष्ट है कि अगर आपका आन्दोलनात्मक पक्ष कमज़ोर पड़ रहा है तो फिर क़ानूनी संघर्ष को और भी प्रभावी और चतुराई के साथ इस्तेमाल करना चाहिए। श्रम विभाग में सुनवाई नहीं हो रही थी और मज़दूरों को तारीख़ें दे-देकर थकाया जा रहा था। बाद में तो श्रम विभाग ने सीधे तौर पर हाथ खड़े कर दिये थे। लेकिन इसके बावजूद "इंक़लाबी-क्रान्तिकारी कामरेडों" ने इसे हर क़ीमत पर उच्च न्यायालय की ओर जाने से रोका और कहते रहे कि "यह आख़िरी हथियार है!" आख़िरी हथियार इस्तेमाल करने का इनका वक़्त ही नहीं आया और आन्दोलन बिखर गया! 'ऑटो मज़दूर संघर्ष समिति' ने अस्ति की नेतृत्वकारी समिति के सामने यह प्रस्ताव भी रखा कि देश के अग्रणी श्रम वकील के ज़रिये हाईकोर्ट जाने का रास्ता खुला हुआ है और अब ऐसा न करना देर करना होगा। मज़दूर नेतृत्व इस पर तैयार भी हो रहा था। लेकिन "इंक़लाबी-क्रान्तिकारी कामरेड" हमेशा की तरह कानाफूसी और कुत्साप्रचार की राजनीति कर इस प्रभावी क़दम को उठाने से अस्ति मज़दूर आन्दोलन को रोक दिया।

इन्हीं कमियों के चलते अस्ती मज़दूरों का सम्भावनासम्पन्न संघर्ष एक और निराशापूर्ण हार में समाप्त हुआ। निश्चित तौर पर, यह कोई आख़िरी आन्दोलन नहीं है और आयेदिन ऑटोमोबाइल पट्टी के किसी न किसी हिस्से से हड़ताल या आन्दोलन की लपटें उठती रहती हैं। लेकिन यह भी स्पष्ट है कि हम मज़दूर अपने दुश्मनों और भितरघातियों को पहचान लें। चुनावी पार्टियों से जुड़े केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संघ, "इंक़लाबी-क्रान्तिकारी कामरेडों" (जिनमें से एक संगठन की ख्याति ही टर्मिनेटेड वर्कर्स सेण्टर के तौर पर बन गयी है क्योंकि ये हर संघर्ष का ख़ात्मा इसी तरह कराते हैं कि जो बचता वह केवल मज़दूरों की छँटनी और निष्कासन होता है!) जैसे राजनीतिक नौबढ़ों और अराजकतावादी-संघाधिपत्यवादियों से हमें सावधान रहना होगा। ये पहले भी कई संघर्षों को डुबा चुके हैं।

निर्माण मज़दूर यूनियन (नरवाना, हरियाणा) द्वारा निःशुल्क मेडिकल कैम्पों का आयोजन

गत 30 दिसम्बर को निर्माण मज़दूर यूनियन द्वारा नौजवान भारत सभा के सहयोग से निःशुल्क मेडिकल कैम्पों का आयोजिन किया गया। पहला कैम्प शहीद भगतसिंह चौक पर लगाया गया तथा दूसरा निर्माण मज़दूर यूनियन के कार्यालय पुराने बस अड्डे के पास लगाया गया। दो डॉक्टर साथियों ने कैम्प के लिए अपना समय दिया। कैम्पों में करीब 400 लोगों के स्वास्थ्य की जाँच की गयी, उन्हें दवाइयाँ वितरित की गयी और स्वास्थ्य के सवाल पर जागरूक किया गया। अधिकतर लोग मौसमी बीमारियों से ग्रसित थे और देखे गये लोगों में से लगभग 70-80 प्रतिशत कुपोषण का शिकार थे, जिनमें मज़दूरों के मामले सबसे अधिक थे। निर्माण मज़दूर यूनियन के सचिव रमेश ने बताया कि लोगों के दवा-इलाज का प्रबन्ध करना सरकार की ज़िम्मेदारी होती है, क्योंकि जनता अपनी हर ज़रूरत के सामान पर अप्रत्यक्ष कर भरती है जो अप्रत्यक्ष कर कुल बजट का लगभग 85-90 प्रतिशत हिस्सा होता है, लेकिन लोकतन्त्र के नाम पर पूँजीवादी सरकारें हमेशा ही आम जनता के साथ शिक्षा-चिकित्सा और रोज़गार जैसे मुद्दों पर भद्दा मज़ाक़ करती रही हैं। जन स्वास्थ्य के नाम पर खस्ताहाल अस्पताल और बदइन्तज़ामी का आलम एकदम साफ़-साफ़ देखा जा सकता है। दवा कम्पनियों और भ्रष्ट डॉक्टरों का गठजोड़ लोगों को सिर्फ़ कमाई के एक ज़रिये के रूप में इस्तेमाल करता है। लोगों की मेहनत की कमाई का बहुत बड़ा हिस्सा आज दवाओं पर ही ख़र्च हो जाता है। सरकार पूरी तरह दवा कम्पनियों के हित में काम कर रही है। पिछले दिनों सरकार ने 108 दवाओं को मूल्य नियन्त्रण में लाने के फ़ैसले पर रोक लगा दी। हालिया बजट में स्वास्थ्य पर सिर्फ़ 35 हज़ार करोड़ रुपया ख़र्च हुआ है लेकिन बड़े कॉरपोरेट घरानों को 5 लाख 32 हज़ार करोड़ की प्रत्यक्ष छूट दे दी गयी। हाल ही में भाजपा ने स्वास्थ्य बजट में से 20 फ़ीसदी की कटौती करके कोढ़ में खाज का काम किया है। बेशक स्वास्थ्य के बुनियादी हक़-अधिकारों को जनएकजुटता और संघर्ष के द्वारा ही हासिल किया जा सकता है। सरकारों के मुँह की तरफ़ निहारने से कुछ नहीं होने वाला। इसीलिए जनता को लगातार स्वास्थ्य के मुद्दों पर भी जागरूक किये जाने की ज़रूरत है। कैम्प के दौरान इस मुद्दे पर पर्चा वितरण भी किया गया। कैम्प के लिए दवाओं का इन्तज़ाम भी जनसहयोग के द्वारा ही किया गया और डॉक्टर साथियों ने भी सहयोग में ही अपना समय दिया। इसके अलावा नौजवान भारत सभा के नरवाना इकाई के वालंटियरों ने व्यवस्थागत प्रबन्ध किया।

– हरियाणा संवाददाता

दिल्ली इस्पात उद्योग मज़दूर यूनियन के पंजीकरण और मन्दी से घबराये मालिकों और दलालों द्वारा यूनियन के ख़िलाफ़ अफ़वाहें फैलाने की मुहिम

हड़ताल के बाद की परिस्थिति और मालिकों और दलालों का यूनियन विरोधी प्रचार अभियान

वज़ीरपुर में विगत 24 दिसम्बर को दिल्ली इस्पात उद्योग मज़दूर यूनियन पंजीकृत हो गयी। मज़दूरों की यूनियन के पंजीकरण को मालिकों और दलालों ने पंजीकृत होने से रोकने की भी ख़ूब कोशिशें कीं। यूनियन को इलाक़े में भी तमाम हमलों का सामना करना पड़ा है। फ़ैक्टरी मालिक और उनके दलालों की वजह से ही लम्बे समय से यूनियन को कार्यालय के लिए इलाक़े में झुग्गी मालिक कमरा देने को तैयार नहीं है। अन्तत: स्वयं मज़दूरों ने ही यूनियन के आधिकारिक कार्यालय का इन्तज़ाम किया। मालिकान द्वारा तमाम बाधाएँ पैदा करने के बावजूद यूनियन पंजीकृत हो गयी है।

नतीजतन, मालिकों ने मज़दूरों में इस बीच तबीयत से अफ़वाह फैलाने का प्रयास किया है। बाज़ार में लम्बे समय से चीन का माल आ रहा है जोकि वज़ीरपुर की स्थानीय फ़ैक्टरियों के लिए चुनौती है। वज़ीरपुर में फ़ैक्टरियाँ एक-दूसरे पर निर्भर हैं। पहले स्टील की लम्बी पत्तियों को कटर छोटे पीस में काटता है जो गर्म रोला मिल में फैलकर चपटी पत्तल बन जाती है। यही पत्तल फिर तेज़ाब की फ़ैक्टरी जाती है। और फिर तेज़ाब से फुड़ाई (ठंडा रोला) की मशीन पर जाती है। इस तरह ही गरम रोला से तेज़ाब, तपाई और फुड़ाई व तैयारी से गुज़रकर स्टील की पत्तल को पॉवर प्रेस और उसके बाद पॉलिश के लिए भेजा जाता है। एक फ़ैक्टरी से दूसरी फ़ैक्टरी में माल ढोने का काम रिक्शा मज़दूर करते हैं। चीन का माल सीधे बड़ी मशीनों से बनकर आता है। यह सीधे पावर प्रेस और पोलिश के लिए इस्तेमाल हो सकता है। यही कारण है कि चीन के माल से वज़ीरपुर की फ़ैक्टरियों के बड़े हिस्से को प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है।

6 जून से हुई मज़दूरों की हड़ताल ने वज़ीरपुर की फ़ैक्टरियों के इस क्रम को तोड़ दिया और गरम रोला की हड़ताल ने सीधे ठंडा, तेज़ाब और तपाई पर असर डाला। इस बीच चीन का माल और बादली की फ़ैक्टरियों से माल जमकर इलाक़े में आता रहा। हड़ताल ख़त्म होने पर मालिकों को उम्मीद थी कि फ़ैक्टरी में तेज़ गति से माल निकलेगा। परन्तु चीन से आ रहा माल इतना सस्ता था कि पावर प्रेस और पोलिश के मालिकों ने चीन का माल वज़ीरपुर के गरम रोला के माल से ज़्यादा फ़ायदेमन्द समझा। यह इलाक़े में मन्दी का सबसे बड़ा कारण है। यह गरम और ठंडा के मालिकों को पहले से ही पता था। क्योंकि ये लोग हड़ताल के पहले से ही सरकार पर दबाव बनवा रहे थे कि सरकार चीन के माल पर आयात कर बढ़ा दे और इस साल के बजट ने मालिकों की सरकार के फ़ायदे का क़दम उठाया और चीनी स्टील के आयात कर में बढ़ोतरी कर दी। परन्तु इतना भी काफ़ी नहीं था, क्योंकि चीनी मालिकों ने बाज़ार में टिके रहने के लिए अपने माल की क़ीमतें और गिरा दीं। मालिक सरकार से गुहार लगाते रहे कि चीन का माल बन्द करवा दिया जाये या उस पर और अधिक कर लगा दिया जाये। ऐसा ही पत्र लेकर वज़ीरपुर के तमाम मालिकों ने अरुण जेटली से भी रहम की भीख माँगी थी। मोदी सरकार मालिकों की सरकार ज़रूर है पर यह बड़े मालिकों की सरकार है। वज़ीरपुर के मालिक छोटे मालिक हैं। मोदी सरकार के लिए अपने देश के बड़े पूँजीपतियों का ख़याल रखना सबसे ज़रूरी है। क्योंकि ऐसी नीति जिसमें सरकार विदेशी माल पर अधिक कर लगाती है, भारत में हो रहे निवेश पर बट्टा लगा सकती है और दुनियाभर में घूम-घूमकर निवेश की माँग कर रहे मोदी ऐसा क़दम कैसे उठा सकते थे? और तो और ख़ुद कई ऐसे बड़े मालिक हैं जिनका माल ख़ुद चीन जाता है। ऐसे में, यदि यहाँ के मालिक चीनी माल पर प्रतिबन्ध लगाने या अधिक कर व शुल्क लगाने की वकालत करते हैं, तो उन्हें इस बात के लिए भी तैयार रहना पड़ेगा कि चीनी व अन्य विदेशी बाज़ारों के दरवाज़े उनके लिए बन्द हो जायेंगे। इसके अलावा, यहाँ के छोटे मालिक न सिर्फ़ विदेशी माल से प्रतिस्पर्द्धा झेल रहे हैं, बल्कि देशी बड़ी पूँजी भी उनके लिए अस्तित्व का संकट पैदा कर रही है। इसलिए वास्तव में मामला देशी और विदेशी पूँजी का नहीं बल्कि बड़ी और छोटी पूँजी का है। दिल्ली का इस्पात उद्योग जिस संकट का शिकार है, वह वही संकट है जोकि छोटी पूँजी को पूँजीवाद के तहत झेलना पड़ता है। निश्चित तौर पर, इस्पात उद्योग बन्द नहीं होगा। लेकिन इसमें ढाँचागत परिवर्तन आ सकते हैं और मालिक वर्ग के संघटन में कुछ बदलाव भी आ सकता है।

मालिकों द्वारा फैलायी जा रही अफ़वाहें

हड़ताल के बाद बदली परिस्थितियों और यूनियन के बढ़ते क़दम को देखते हुए मालिकों ने तमाम क़िस्म की अफ़वाहें फैलायीं। कम चेतना वाले मज़दूरों में इसका एक हद तक असर भी पड़ा। सबसे पहले तो मालिकों ने कहा कि हड़ताल की वजह से चीन का माल वज़ीरपुर आया है और यूनियन भी चीन का माल लाना चाहती है। अगर यह सच है तो जे.के. बंसल (ए-72 का मालिक और मालिकों का नेता) से लेकर वज़ीरपुर के तमाम मालिक क्यों इस देश की सरकार के आगे नतमस्तक हो रहे थे कि वह चीन के माल पर प्रतिबन्ध या कर लगाये? और क्या जूता-चप्पल, छाता, मोबाइल, पानी, झोले, टीवी, रिक्शा, साइकिल से लेकर जो भी चीनी माल भारत में पिछले कई सालों से आ रहा है उसके लिए भी 6 जून 2014 की हड़ताल और उसके बाद बनी यूनियन ज़िम्मेदार है? यूनियन की मज़दूरों में पकड़ के कारण जब ये अफ़वाहें बेअसर-सी दिखायी दीं तो मालिकों ने एक और शिगूफ़ा छोड़ा कि अगर यूनियन चाहे तो इलाक़े में चीन से माल आने को रोक सकती है। मालिकों ने यूनियन के लोगों के सामने यह प्रस्ताव तक रख दिया कि मालिकों और मज़दूरों को चीन के माल के भारतीय बाज़ार में आने के ख़िलाफ़ संयुक्त प्रदर्शन करना चाहिए!

हम मज़दूरों को समझ लेना चाहिए कि वज़ीरपुर का छोटा मालिक जो संकट झेल रहा है, आज की पूँजीवादी व्यवस्था में उससे बचा ही नहीं जा सकता। पूँजीवाद का नियम होता है कि बड़ी मछली छोटी मछली को खाती है। अगर छोटे मालिक और ठेकेदार पूँजीवादी मुनाफ़े के खेल को खेलने को तैयार हैं, तो अब रो क्यों रहे हैं? वे चाहते हैं कि उनके माल को विदेशी बाज़ार में मुफ़्त एण्ट्री मिले, लेकिन उनके अपने बाज़ार में किसी विदेशी माल को न घुसने दिया जाये? वैसे भी अगर वज़ीरपुर के छोटे मालिकों को कोई बड़ी पूँजी वाला ख़रीद लेता है, तो इससे हम मज़दूरों पर कोई फ़र्क़ नहीं पड़ने वाला है। हमें चाहे छोटा मालिक लूटे या बड़ा मालिक लूटे, हमें तो लड़ना ही है! हम छोटे मालिक के दुख से क्यों जज़्बाती हों? उसने हमारे लिए क्या किया है? जब हमने मोदी सरकार द्वारा श्रम क़ानूनों में 'सुधार' के ख़िलाफ़ जन्तर-मन्तर पर प्रदर्शन किया था, तो क्या वज़ीरपुर का गरम रोला या ठण्डा रोला का मालिक हमारे साथ आया था? जब हम श्रम क़ानूनों को लागू करने की माँग कर रहे थे तो क्या इन मालिकों और ठेकेदारों ने हमारी माँग मानी थी? जब हमारे भाई इनके कारख़ानों में होने वाली दुर्घटनाओं में मरते हैं तो क्या ये हमें क़ानूनी मुआवज़ा देते हैं? क्या हमारी मज़दूरी में से काटा जाने वाला ईएसआई-पीएफ़ हमें दिया जाता है? तो फिर इन छोटे मालिकों और बड़े मालिकों की आपसी प्रतिस्पर्द्धा में हम छोटे मालिकों के मोहरे क्यों बनें? बात जैसे को तैसा की नहीं है बल्कि इसकी वजह यह है कि हमारी बुनियादी माँगों पर ये मालिक हमें नौकरी से निकालने को तैयार रहते हैं और अपने हित साधने के लिए अब हमारी ताक़तवर यूनियन का इस्तेमाल करना चाहते हैं।

जैसाकि हमने दिखलाया है, पूँजीवाद का नियम ही है कि इसमें बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है। किसी सेक्टर में मशीनीकरण या आधुनिक मशीनों से लैस फ़ैक्टरियों द्वारा बाज़ार से छोटी मशीनों और छोटे मालिकों को तबाह करना इस व्यवस्था की नैसर्गिक गति है। हालाँकि फ़ौरी तौर पर इससे उथल-पुथल मचती है परन्तु इसके बावजूद यह मज़दूरों की वर्ग चेतना को बढ़ाती है। भले ही काम छोटे कारख़ानों में न होकर जिंदल स्टील में हो, इससे मज़दूरों को कोई नफ़ा-नुक़सान नहीं है। बल्कि, दूरगामी तौर पर यह मज़दूर वर्ग के लिए आगे बढ़ा हुआ क़दम है। अक्सर मशीनीकरण को मज़दूर अपना दुश्मन समझते हैं। मशीनीकरण असल में तो एक मज़दूर के काम को आसान बनाता है। उदाहरण के तौर पर अगर मान लिया जाये कि पहले एक फ़ैक्टरी में 100 मज़दूर 12 घण्टे में 20 टन माल निकालते थे तो मशीनीकरण के बाद उस फ़ैक्टरी में वही 100 मज़दूर 6 घण्टे में 20 टन माल निकालेंगे। परन्तु मुनाफ़े की व्यवस्था में मालिक मज़दूरों की छँटनी कर देता है और 50 मज़दूरों से ही 12 घण्टे काम करवाता है। दोष मशीनों का नहीं है, बल्कि पूँजीवादी व्यवस्था का है। जिस व्यवस्था के केन्द्र में निजी मुनाफ़ा होगा, उसमें मशीनीकरण से मज़दूरों को सहूलियत और राहत मिलने की बजाय बेकारी मिलती है। जब तक मज़दूरों का राज क़ायम नहीं होता है, तब तक मशीनीकरण से मज़दूर तबाह होगा। परन्तु यही बेकारी मज़दूरों को राजनीतिक तौर पर सचेत बनाती है और उन्हें यह भी समझने में मदद करती है कि हमारा असल दुश्मन एक मालिक नहीं या मशीन नहीं, बल्कि यह मुनाफ़ा-आधारित व्यवस्था है।

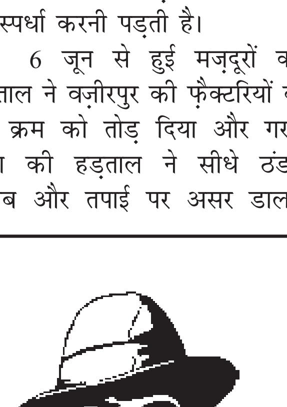

भगतसिंह की बात सुनो

धार्मिक अन्धविश्वास और कट्टरपन हमारी प्रगति में बहुत बड़े बाधक हैं। वे हमारे रास्ते के रोड़े साबित हुए हैं और हमें उनसे हर हालत में छुटकारा पा लेना चाहिए। "जो चीज़ आज़ाद विचारों को बर्दाश्त नहीं कर सकती उसे समाप्त हो जाना चाहिए।" इसी प्रकार की और भी बहुत सी कमजोरियाँ हैं जिन पर हमें विजय पानी है। हिन्दुओं का दकियानूसीपन और कट्टरपन, मुसलमानों की धर्मान्धिता तथा दूसरे देशों के प्रति लगाव और आम तौर पर सभी सम्प्रदायों के लोगों का संकुचित दृष्टिकोण आदि बातों का विदेशी शत्रु हमेशा लाभ उठाता है। इस काम के लिए सभी समुदायों के क्रान्तिकारी उत्साह वाले नौजवानों की आवश्यकता है।

(नौजवान भारत सभा, लाहौर का घोषणापत्र)

भारत साम्राज्यवाद के जुवे के नीचे पिस रहा है। इसमें करोड़ों लोग आज अज्ञानता और ग़रीबी के शिकार हो रहे हैं। भारत की बहुत बड़ी जनसंख्या जो मज़दूरों और किसानों की है, उनको विदेशी दबाव एवं आर्थिक लूट ने पस्त कर दिया है। भारत के मेहनतकश वर्ग की हालत आज बहुत गम्भीर है। उसके सामने दोहरा ख़तरा है – विदेशी पूँजीवाद का एक तरफ़ से और भारतीय पूँजीवाद के धोखे भरे हमले का दूसरी तरफ़ से। भारतीय पूँजीवाद विदेशी पूँजी के साथ हर रोज बहुत से गँठजोड़ कर रहा है। ...

भारतीय पूँजीपति भारतीय लोगों को धोखा देकर विदेशी पूँजीपति से विश्वासघात की कीमत के रूप में सरकार में कुछ हिस्सा प्राप्त करना चाहता है। इसी कारण मेहनतकश की तमाम आशाएँ अब सिर्फ़ समाजवाद पर टिकी हैं और सिर्फ़ यही पूर्ण स्वराज्य और सब भेदभाव ख़त्म करने में सहायक साबित हो सकता है। देश का भविष्य नौजवानों के सहारे है। वही धरती के बेटे हैं।

(हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन का घोषणापत्र)

कोयला खान मज़दूरों के साथ केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों की घृणित ग़द्दारी

पाँच दिवसीय हड़ताल के आह्वान को शर्मनाक तरीक़े से दूसरे दिन ही ख़त्म का दिया

6 जनवरी, 2015 से शुरू होनेवाली कोयला खान के मज़दूरों की पाँच दिवसीय हड़ताल कई कारणों से चर्चा में रही। हड़ताल जब शुरू भी नहीं हुई थी तब इस बात की चर्चा हो रही थी कि इस हड़ताल से औद्योगिक उत्पादन और भारतीय अर्थव्यवस्था को कितना नुक़सान होगा, और जब हड़ताल शुरू हुई तो चर्चा इस बात की होने लगी कि शायद यह कोयला खान मज़दूरों का आनेवाले दिनों के लिए सबसे बड़ा हड़ताली क़दम बने। लेकिन इस हड़ताल का चर्चा में रहने का वास्तविक कारण तो महज़ एक होना चाहिए – और वह है एक दफ़ा फिर केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों द्वारा मज़दूरों के साथ ग़द्दारी करना और पूँजीपतियों एवं कारपोरेट घरानों की चाकरी करनेवाली मोदी सरकार के आगे घुटने टेक देना।

अगर एक बार फिर याद करें तो देश की पाँच केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों – एचएमएस, बीएमएस, इंटक, एटक, सीटू ने 6 जनवरी से कोयला खान मज़दूरों की पाँच दिवसीय हड़ताल का आह्वान किया था। इन केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों द्वारा हड़ताल का प्रमुख कारण मोदी सरकार द्वारा कोल इण्डिया लिमिटेड के निजीकरण और विराष्ट्रीकरण का विरोध करना था। साथ ही इन ट्रेड यूनियनों का यह कहना था कि इस हड़ताल के एजेण्डा पर कोल इण्डिया लिमिटेड में श्रम के ठेकाकरण की व्यवस्था को पूर्ण रूप से ख़त्म कर देना भी शामिल था। सुनने में यह सब काफ़ी अच्छा लग रहा है, लेकिन वास्तव में हुआ कुछ और ही। 6 जनवरी को शुरू हुई हड़ताल अगले ही दिन शाम को अचानक तोड़ दी गयी। और क्यों? क्योंकि कोयला मन्त्री पीयूष गोयल द्वारा इन पाँच यूनियनों के नेताओं को यह आश्वासन दिलाया गया कि सरकार की कोल इण्डिया लिमिटेड के विराष्ट्रीकरण की कोई योजना नहीं है, इन नेताओं को सरकार की विनिवेश योजनाओं से भी अवगत कराया गया, इन्हें यह भी समझाया गया कि विनिवेश का मतलब निजीकरण थोड़े ही है और अन्त में इन्हें इस बात का भी भरोसा दिलाया गया कि मोदी सरकार कोयला खान के मज़दूरों के हितों की रक्षा करेगी। और फिर अच्छे, तमीज़दार, आज्ञाकारी बालकों के समान इन ट्रेड यूनियनों को यह बात समझ में आ गयी! और जैसाकि अक्सर होता है इस बार भी हुआ – एक उच्च स्तरीय समिति के गठन का झुनझुना इन "आज्ञाकारी बालकों" के हाथों में थमा दिया गया। मज़दूरों के बीच अपना धन्धा-पानी चलाने के लिए अपनी गिरती साख बचाने के लिए इन यूनियनों को कुछ तो दिखाना ही था, सो कोयला मन्त्री के साथ हुई वार्ता को ये लोग बड़ी जीत के तौर पर प्रचारित कर रहे हैं। यह नहीं बता रहे कि कोयला मन्त्री को बड़ी ही बेशर्मी के साथ इन लोगों ने यह आश्वासन दिया कि डेढ़ दिन की हड़ताल के दौरान जो नुक़सान हुआ है, उसकी भरपाई मज़दूरों के द्वारा कर दी जायेगी। वास्तव में इन ट्रेड यूनियनों ने मौक़ापरस्ती की एक और मिसाल क़ायम की है। पूँजी की ताक़तों के आगे घुटने टेक देने को ये यूनियनें अपनी जीत बता रही हैं। एक बार फिर मज़दूरों के हितों की दलाली करने को अपनी जीत का नाम दे रही हैं।

इस तरह की हड़तालों का आह्वान इन केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों के लिए कोइे नयी बात नहीं है। बीच-बीच में इन्हें मज़दूरों के दबाव के चलते ऐसा करना पड़ता है ताकि आम मज़दूरों में इनकी असलियत की कलई न खुल जाये। मज़दूर आन्दोलन के अन्दर 'सेफ़्टी-वॉल्व' की भूमिका अदा करनेवाली ये केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें वास्तव में मज़दूरों के किसी भी संघर्ष को किसी मुक़ाम तक पहुँचाने के लिए लड़ती ही नहीं हैं क्योंकि इनका ऐसा करने का कोई इरादा ही नहीं है। इसलिए कोयला खान मज़दूरों की हड़ताल का भी यही हश्र हुआ।

लेकिन इन केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों की बातबहादुरी देखिये। हड़ताल शुरू होने के कुछ दिन पहले से ही इन यूनियनों के बड़े-बड़े नेताओं के तेवर भरे बयान अख़बारों और टीवी चैनलों पर आ रहे थे। कोई कह रहा था कि यह कोयला खान मज़दूरों के इतिहास की सबसे बड़ी हड़ताल होगी तो कोई कह रहा था कि यह मज़दूरों के लिए 'करो या मरो' की स्थिति वाली हड़ताल होगी। लेकिन हड़ताल असलियत में क्या हुई, यह सबने देख ही लिया। वास्तव में इन ट्रेड यूनियनों पर मज़दूरों की तरफ़ से ही हड़ताल करने का दबाव बनाया जा रहा था। पिछले साल 24 नवम्बर को भी हड़ताल का आह्वान किया गया लेकिन बाद में वापस ले लिया गया। इससे देश के कोयला खान मज़दूरों में ख़ासा गुस्सा और असन्तोष था।

और गुस्सा हो भी क्यों ना? एक तरफ़, तो इन केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों की मौक़ापरस्ती कोयला खान मज़दूरों से संघर्ष का हथियार छीन रही है, वहीं दूसरी तरफ़ मोदी सरकार की खुली पूँजीपरस्त नीतियाँ मेहनत और कुदरत की लूट को पूँजीपतियों के लिए और आसान बना रही है। कोयला खान (विशेष प्रावधान) अध्यादेश, 2014 इसी दिशा में एक नया क़दम है। इस अध्यादेश के मुताबिक़ देश के कोयला भण्डार को निजी पूँजी द्वारा दोहन के लिए खुला छोड़ दिया जायेगा। यह अध्यादेश निजी कम्पनियों को व्यावसायिक उपयोग के लिए कोयला ब्लॉकों की ई-नीलामी की आज्ञा देता है, इसका मतलब यह है कि कोल इण्डिया लिमिटेड, जोकि इस समय देश की सबसे बड़ी सार्वजनिक/राष्ट्रीयकृत कोयला खनन कम्पनी है और कुल कोयला उत्पादन का 80 प्रतिशत हिस्सा पैदा करती है, के दरवाज़े अब निजी पूँजी के लिए खोल दिये जायेंगे। ज़ाहिरा तौर पर यह निजीकरण की प्रक्रिया में ही एक बड़ा क़दम है। इसके बाद कोयला खान मज़दूरों की स्थिति और कमज़ोर हो जायेगी। अभी भी जहाँ-जहाँ निजी कम्पनियाँ कोयला खनन में लगी हैं, वहाँ मज़दूरों के हालात काफ़ी ख़राब हैं। उन कोयला खान मज़दूरों को न्यूनतम मज़दूरी तक नसीब नहीं हो रही है। समझा जा सकता है कि यही प्रक्रिया जब कोल इण्डिया लिमिटेड में लागू होगी तो 3.50 लाख कोयला खान मज़दूरों की स्थिति का क्या अंजाम होगा?

चाहे कोयला अध्यादेश हो या भूमि अधिग्रहण क़ानून, या फिर श्रम क़ानूनों के सुधार का ही सवाल क्यों न हो – मोदी सरकार की मंशा एकदम साफ़ है – पूँजीपतियों को पूजो, आबाद करो; मेहनतकशों को लूटो, बर्बाद करो। जहाँ एक तरफ़ देश की भूमि, खनिज और प्राकृतिक संसाधनों को पूँजी के निर्बाध दोहन के लिए खुला छोड़ दिया जा रहा है वहीं दूसरी ओर श्रम की लूट को और अधिक क़ानूनी तथा संस्थाबद्ध रूप दिया जा रहा है। यही तो है मोदी सरकार के "अच्छे दिनों" की सच्चाई। देश के मेहनतकशों को इस बात से जल्द-से-जल्द रू-ब-रू होना होगा और इस बात को वे समझ भी रहे हैं। साथ ही अपने असली दोस्तों की शिनाख़्त भी करनी होगी। केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों का चरित्र बीतते हर मिनट के साथ साफ़ हो रहा है इसलिए उनके भरोसे बैठे रहना अपने ही पाँव पर कुल्हाड़ी मारना होगा। मज़दूर आन्दोलन को एक क्रान्तिकारी शुरुआत की ज़रूरत है जो उस पर होनेवाले हमलों का ठोस, कारगर और माक़ूल जवाब दे सके।

– शिवानी

दिल्ली मेट्रो रेल के टॉम ऑपरेटरों की 5 घण्टे की चेतावनी हड़ताल

इस बार दिल्ली मेट्रो रेल में नये वर्ष की शुरुआत ठेका मज़दूरों के संघर्ष से हुई। यूँ तो पिछले लम्बे समय से दिल्ली मेट्रो रेल के ठेका मज़दूर अपनी यूनियन के माध्यम से क़ानूनी हक़-अधिकारों के लिए संघर्ष करते रहे हैं, लेकिन ठेका कम्पनी, डीएमआरसी प्रबन्धन और श्रम विभाग गठजोड़ भी मज़दूरों के शोषण करने के नये-नये तरीक़े खोजता रहता है जिसका मज़दूरों के पास सिर्फ़ एक ही जवाब होता है : संगठित होकर हड़ताल की जाये। इस बार 1 जनवरी को द्वारका मोड़ से लेकर द्वारका सेक्टर 21 तक वर्षाद ठेका कम्पनी के टॉम ऑपरेटरों (टिकट बाँटने वाले कर्मचारी) ने वेतन और बोनस न मिलने के कारण सुबह 6 बजे से 11 बजे तक काम रोक दिया। टॉम ऑपरेटर मनोज ने बताया कि वर्षाद ठेका कम्पनी ने पिछले तीन माह से न तो वेतन का भुगतान किया और दीवाली पर मिलने वाले बोनस का भुगतान किया। जिसको लेकर टॉम ऑपरेटर शिकायत करते रहे हैं लेकिन सिर्फ़ झूठे भरोसे और डराने-धमकाने के सिवाय उन्हें कुछ नहीं मिला। जिसके बाद टॉम ऑपरेटरों ने संघर्ष का रास्ता चुना और 5 घण्टे की चेतावनी हड़ताल देकर ठेका कम्पनी और डीएमआरसी प्रबन्धन की तानाशाही को करारा जवाब दिया। 11 बजे डीएमआरसी के उच्च अधिकारियों ने मज़दूरों को भरोसा दिया कि आने वाली 7 जनवरी को सभी मज़दूरों को वेतन और बोनस का भुगतान किया जायेगा। इस भरोसे पर मज़दूरों ने हड़ताल को समाप्त कर दिया। मगर इस घटना ने फिर साबित कर दिया कि दुनियाभर के तमाम अवार्ड पाने वाली दिल्ली मेट्रो रेल की चमक के पीछे ठेका मज़दूरों का भयंकर शोषण छिपा है।

यूँ कहने को आज दिल्ली मेट्रो रेल ज़रूर दिल्ली-एनसीआर की लाइफ़लाइन बन चुकी है, रोज़ाना 20 लाख से ज़्यादा यात्री मेट्रो में सफ़र करते हैं, दुनियाभर में दिल्ली मेट्रो रेल को हम ठेका मज़दूरों और कर्मचारियों ने नम्बर 1 मेट्रो रेल बना दिया। मगर इस चमचमती मेट्रो रेल को चलाने वाले हज़ारों ठेका मज़दूर (टॉम ऑपरेटर, सफ़ाईकर्मी और सिक्योरिटी गार्ड) की ज़िन्दगी में अँधेरा ही है। लगभग 5 हज़ार से ज़्यादा ठेका मज़दूर दिन-रात मेट्रो रेल के बेहतर परिचालन के लिए कमर-तोड़ मेहनत करते हैं लेकिन बदले में डीएमआरसी और ठेका कम्पनियाँ बुनियादी श्रम-क़ानून जैसे न्यूनतम वेतन, ईएसआई, पीएफ़ या बोनस के क़ानून भी लागू नहीं करती हैं। यूँ तो प्रत्येक मेट्रो स्टेशन पर न्यूनतम मज़दूरी क़ानून के बोर्ड लगे हुए हैं लेकिन हम मज़दूर जानते हैं कि ये क़ानून सिर्फ़ बोर्ड या काग़ज़ों पर शोभा बढ़ाते हैं, असल में डीएमआरसी और ठेका कम्पनियाँ खुलेआम श्रम-क़ानूनों का उल्लंघन करते हैं, जिसके ख़िलाफ़ यूनियन ने कई दफ़ा डीएमआरसी और ठेका कम्पनियों को श्रम विभाग में दोषी भी साबित किया है। लेकिन श्रम विभाग की मिलीभगत से मज़दूरों को उनका जायज़ हक़ नहीं मिलता।

तभी आज सभी कम्पनियाँ नौकरी के नाम पर 25 हज़ार सिक्योरिटी मनी वसूलती हैं और सालभर में ही छँटनी या रि-कॉल करके नयी भर्ती के नाम पर कमाई करती हैं। वहीं सफ़ाईकर्मियों के हालात और भी बदतर हैं। यूँ तो प्रधानमन्त्री मोदी देशभर में स्वच्छता अभियान की नौटंकी चला रहे हैं लेकिन जो असल ज़िन्दगी में दिन-रात मेट्रो रेल में साफ़-सफ़ाई का बोझ उठाता है, उन सफ़ाईकर्मियों को न्यूनतम वेतन भी नहीं मिलता है। असल में इस शोषण और अत्याचार के ज़िम्मेदार हम भी हैं क्योंकि चुपचाप सब कुछ सहन करते जाते हैं, दूसरा हम अलग-अलग कम्पनियों के नाम पर बिखरे हुए हैं जबकि हमारी मेहनत को लूटने वाली ठेका कम्पनियाँ और डीएमआरसी प्रबन्धन एक हैं। इसका जवाब मज़दूर सिर्फ़ अपनी एकता से ही दे सकते हैं। पहले भी 'दिल्ली मेट्रो रेल कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन' ने मेट्रो मज़दूरों के संघर्ष लड़े हैं और जीते हैं। इस संघर्ष के साथ यूनियन ने नये सिरे से ठेका मज़दूरों के हक़ों के लिए और साथ ही यूनियन पंजीकरण के कार्य को पूरा करने की मुहिम की शुरुआत की है। ज्ञात हो कि पिछले 2 वर्षों से डीएमआरसी प्रशासन और श्रम विभाग मिलीभगत से यूनियन के पंजीकरण को रोकने का प्रयास करते रहे हैं। यह और कुछ नहीं उनके डर को दिखलाता है। निश्चित तौर पर, ऐसी चालें यूनियन के पंजीकरण को नहीं रोक सकती हैं। मज़दूर नये सिरे से यूनियन को पंजीकृत कराने की मुहिम चला रहे हैं। द्वारका लाइन के मेट्रो मज़दूरों की हड़ताल महज़ एक चेतावनी और शुरुआत थी। इसके साथ, मेट्रो ठेका मज़दूरों का संघर्ष फिर से शुरू हो गया है।

– बिगुल संवाददाता

जानलेवा है पूँजीवादी विकास

औद्योगिक कचरे से दोआबा क्षेत्र का भूजल और नदियाँ हुईं ज़हरीली

पूँजीवादी व्यवस्था में कल-कारख़ानों और खेत-खलिहानों में मेहनत-मज़दूरी करने वाली आबादी का ख़ून तो चूसा ही जाता है, उत्पादन स्थल के दमघोंटू माहौल से जब लोग बाहर निकलते हैं और अपने घर-परिवार के साथ चैन के कुछ पल बिताना चाहते हैं तो वहाँ भी उन्हें कोई सुकून नहीं मिलता, क्योंकि मुनाफ़ा कमाने की अन्धी होड़ में पूँजीवाद ने समूची आबोहवा में इतना ज़हर घोल दिया है कि लोग स्वच्छ हवा और साफ़ पानी जैसी क़ुदरती नेमतों के लिए भी तरस रहे हैं। जहाँ एक ओर औद्योगिक उत्सर्जन से ग्रीन हाउस प्रभाव, ओज़ोन परत में छेद और वायु प्रदूषण जैसे ख़तरनाक प्रभाव सामने आ रहे हैं, वहीं दूसरी ओर औद्योगिक कचरे की वजह से नदियों का जल तेज़ी से दूषित हो रहा है और भूजल तक में ज़हर घुलता जा रहा है, जिसकी वजह से लोगों में कैंसर जैसी जानलेवा बीमारियाँ बढ़ रही हैं।

मिसाल के तौर पर गंगा और यमुना नदियों के बीच स्थित दोआबा क्षेत्र को ले लें। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में स्थित दोआबा के इलाक़े में काली, हिण्डन और कृष्णा नामक तीन छोटी नदियाँ हैं। ये तीनों ही नदियाँ प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड द्वारा ज़हरीली घोषित की जा चुकी हैं। इन तीनों नदियों का पानी इंसानों और मवेशियों के इस्तेमाल के लायक नहीं रह गया है। हिण्डन नदी गाज़ियाबाद और नोएडा के औद्योगिक इलाक़ों से गुज़रती है और साथ ही इसके किनारे इन औद्योगिक क्षेत्रों में काम करने वाले मज़दूरों की बहुत बड़ी तादाद रहती है। इन तीनों नदियों के किनारे कई गाँव भी बसे हैं। इन नदियों का पानी इतना प्रदूषित हो चुका है कि वह अब सिंचाई में इस्तेमाल लायक भी नहीं रह गया है। यही नहीं इन नदियों का पानी रिसकर भूजल को भी दूषित करने लगा है। इस इलाक़े के भूजल में आर्सेनिक, फ़्लोराइड, निकिल, सीसा आदि की मात्रा सामान्य से कहीं अधिक हो गयी है जिसकी वजह से इस पूरे इलाक़े में रहने वाले लोगों में कैंसर, हेपेटाइटिस, लीवर और किडनी की समस्याओं, पेट की समस्याओं और हड्डी विकारों में बेतहाशा वृद्धि हो रही है।

देश की राजधानी से लगे ग्रेटर नोएडा के छपरौला औद्योगिक इलाक़े के आसपास के गाँवों – सादोपुर, अच्छेजा, सदुल्लापुर, बिश्नूली और खेरा धर्मापुरा – में पिछले कुछ सालों में कैंसर से पीड़ित लोगों की संख्या में ज़बरदस्त उछाल आया है। इन गाँवों के निवासियों का कहना है कि बीस बरस पहले जब छपरौला औद्योगिक क्षेत्र नहीं बना था तब इस इलाक़े में पानी की गुणवत्ता बहुत अच्छी थी और कैंसर जैसी बीमारियों का नामोनिशान तक न था। इस औद्योगिक इलाक़े में 100 से ज़्यादा कारख़ाने हैं जो एडहेसिव, कॉस्मेटिक्स, पेस्टिसाइड, टीवी ट्यूब की मैन्युफ़ैक्चरिंग और धान से भूसी निकालने जैसे कामों में लगे हैं। इन कारख़ानों का कचरा बिना ट्रीट किये हिण्डन नदी में डाल दिया जाता है जो नदी के जल को तो दूषित करता ही है, साथ ही साथ वह रिसकर भूजल को भी ज़हरीला बनाने का काम करता है, जिसकी वजह से विभिन्न किस्म की व्याधियाँ पैदा हो रही हैं। बताने की ज़रूरत नहीं कि यदि किसी परिवार में एक भी व्यक्ति को कैंसर जैसी घातक बीमारी हो जाती है तो उसका इलाज करवाते-करवाते पूरा परिवार कंगाल हो जाता है।

यह समस्या अकेले दोआबा क्षेत्र तक सीमित नहीं है। देश के विभिन्न हिस्सों में फैले सभी औद्योगिक क्षेत्रों में औद्योगिक कचरा यूँ ही बिना किसी ट्रीटमेण्ट या रिसाइक्लिंग के आसपास की नदियों या जलाशयों में छोड़ दिया जाता है। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि पूँजीपति ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफ़े के लक्ष्य की सनक में इतने डूबे रहते हैं कि कारख़ाने के भीतर श्रम क़ानूनों को ताक पर रखकर मज़दूरों की हड्डियाँ निचोड़ने से भी जब उनका जी नहीं भरता तो वे कचरे के ट्रीटमेण्ट में लगने वाले ख़र्च से बचने के लिए तमाम पर्यावरण सम्बन्धी क़ानूनों और कायदों को ताक पर रखकर ज़हरीले कचरे को आसपास की नदियों अथवा जलाशयों में बिना ट्रीट किये छोड़ देते हैं। यही वजह है कि इस देश की तमाम नदियाँ तेज़ी से परनाले में तब्दील होती जा रही हैं।

नदियों की दुर्दशा और भूजल के दूषित होने को देखकर तमाम भावुक पर्यावरणविद और गाँधीवादी इस पर्यावरणीय विनाश के लिए औद्योगिकीकरण को दोषी ठहराते हैं और आधुनिकता एवं विज्ञान के ही विरोधी हो जाते हैं। लेकिन वे यह भूल जाते हैं कि ऐसा करके वे दरअसल इतिहास के पहिये को पीछे ले जाने की वकालत कर रहे होते हैं। सच्चाई तो यह है कि पर्यावरण की इस भयंकर तबाही के लिए उत्पादन की पूँजीवादी पद्धति ज़िम्मेदार है जिसका अन्तिम लक्ष्य अधिक से अधिक मुनाफ़ा कमाना है और इस सनक में वह इंसानी ज़िन्दगी के साथ ही साथ समूचे पर्यावरण को नष्ट करने पर तुल गयी है। यदि सामाजिक उत्पादन समाजवादी उत्पादन सम्बन्धों के तहत किया जाये तो आधुनिक उद्योग और विज्ञान के ज़रिये मनुष्य की ज़रूरतें भी पूरी की जा सकती हैं और साथ ही साथ पर्यावरण की तबाही भी रोकी जा सकती है।

समाजवादी चीन ने दिखायी पर्यावरण की समस्या के समाधान की राह

बीसवीं सदी के समाजवादी प्रयोगों की महान उपलब्धियों पर साम्राज्यवादी कुत्सा-प्रचार की राख और गर्द को हटाने पर हम पाते हैं कि इन प्रयोगों ने न सिर्फ़ शोषणविहीन उत्पादन व्यवस्था को मुमकिन कर दिखाया था, बल्कि यह भी सिद्ध किया था कि यदि उत्पादन व्यवस्था का लक्ष्य मुनाफ़ा न हो तो मनुष्य और प्रकृति के बीच सामंजस्य बिठाया जा सकता है। इस सन्दर्भ में क्रान्तिकारी चीन के महान समाजवादी प्रयोगों का विशेष महत्व है। महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान चीनी समाज में यह बहस छिड़ गयी थी कि क्या किसी कारख़ाने को सिर्फ़ अपने उत्पादन की परवाह करनी चाहिए अथवा समूची जनता की? क्या वे मुनाफ़े के रास्ते जा रहे हैं या संयन्त्र को संचालित करने के तमाम फ़ैसले 'सच्चे दिल से जनता की सेवा करने' और मज़दूरों-किसानों के स्वास्थ्य और जीवन-निर्वाह को ध्यान में रखते हुए लिये जाने चाहिए?

समाजवाद के दौरान चीन में मज़दूरों, पार्टी की कतारों और वैज्ञानिकों की एक टीम को पर्यावरण की समस्या से निपटने की ज़िम्मेदारी सौंपी गयी। जनता के विभिन्न तबक़ों के बीच जाकर उनसे रायशुमारी करने के बाद यह टीम इस नतीजे पर पहुँची कि समस्या के सभी पहलुओं को आत्मसात करते हुए भावी पीढ़ी के दूरगामी हितों के मद्देनज़र ऐसी रणनीति बनायी जानी चाहिए जिसका प्रस्थान बिन्दु जनता की भलाई होना चाहिए। यह तय किया गया कि कारख़ाने अपने कचरे के प्रबन्धन करने और उसे उपयोगी बनाने के रास्ते निकालने के लिए स्वयं ज़िम्मेदार होंगे। ज़हरीले रसायनों से युक्त गन्दे पानी को जलाशयों में एकत्रित करके उसे साफ़ करके सिंचाई व अन्य कामों में इस्तेमाल करने की योजना बनायी गयी। अवशिष्ट पदार्थों से सीमेण्ट, जले हुए कोयले से ईंटें, रद्दी शक्कर से डिस्टिल्ड एल्कोहल, काग़ज़ की लुगदी से पैकेजिंग पेपर बनाया जाने लगा। यही नहीं, व्यापक जन लामबन्दी के ज़रिये उन नदियों की भी सफ़ाई की गयी जिनके तल पर कचरे की मोटी परत जमा हो चुकी थी।

समाजवाद में यह काम इसलिए मुमकिन हो सका, क्योंकि इसके तहत क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी ने मज़दूरों, किसानों, सैनिकों, छात्रों-युवाओं को आने वाली पीढ़ियों के बेहतर भविष्य के लिए लामबन्द किया जो मुनाफ़े, लोभ-लालच और स्वार्थ की संस्कृति फैलाने वाली पूँजीवादी व्यवस्था में कतई मुमकिन नहीं है। ग़ौरतलब है कि चीन में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना के बाद एक बार फिर से वहाँ मुनाफ़ाख़ोरी और लोभ-लालच की संस्कृति पनपी है जिसकी वजह से क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में मेहनतकश जनता के तमाम प्रयासों पर पानी फेरा जा रहा है और एक बार फिर वहाँ की आबोहवा में औद्योगिक कचरे का ज़हर तेज़ी से घुलता जा रहा है जिसका ख़ामियाज़ा समूची मनुष्यता को भुगतना पड़ेगा।

– आनन्द सिंह

बोलते आँकड़े, चीख़ती सच्चाइयाँ

अपनी सामान्य बुद्धि से हम सभी जानते हैं कि प्रकृति जीवन का आधार है। प्रकृति के विनाश का अर्थ है जीवन के सभी रूपों सहित मनुष्य का अन्त। पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली पृथ्वी को तेज़ी के साथ विनाश की ओर धकेल रही है! हालात यहाँ तक पहुँच गये हैं कि पूँजीवाद का ख़ात्मा जीवन को बचाने की पूर्व शर्त बनता जा रहा है। आइये देखें कि पूँजीवाद द्वारा पृथ्वी के विनाश के बारे में वर्तमान रिपोर्टों का क्या कहना है।

धरती का बढ़ता तापमान

धरती का बढ़ता हुआ तापमान मौसम वैज्ञानिकों की चिन्ता का सबब बना हुआ है। धरती का तापमान बढ़ाने वाली गैसों को ग्रीन हाउस गैसों के नाम से जाना जाता है। इसमें कार्बन डाईऑक्साइड, मीथेन आदि गैसें शामिल हैं। एक अनुमान के मुताबिक़ अगले 50 वर्षों में इनके उत्सर्जन की मात्रा दुगुनी होने वाली है, जिसका अर्थ है धरती के तापमान में 3 डिग्री सेल्सियस की बढ़ोत्तरी। पूँजीवाद के विकास से पहले वायुमण्डल में कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा कई लाख वर्षों से 280 पीपीएम थी। पूँजीवाद के उदय के 250 वर्षों के भीतर यह 400 पीपीएम तक पहुँच चुकी है।

ये ग्रीन हाउस गैसें सूरज की गर्मी को सोख लेती हैं और इस तरह धरती के इर्द-गिर्द एक अदृश्य कम्बल का काम करने लगती हैं। इनके बढ़ने से धरती का तापमान बढ़ता है और बारिश तथा फ़सलों का चक्र बदलने लगता है। बाढ़ और सूखा बढ़ने लगते हैं। यही वजह है कि 1980 से वर्ष 2000 के बीच दुनिया में बाढ़ की घटनाएँ 230 प्रतिशत बढ़ी हैं और सूखा 38 प्रतिशत बढ़ा है।

दोषी कौन?

पूँजीवादी मीडिया अक्सर प्रचार करता है कि पर्यावरण प्रदूषण की वजह बढ़ती जनसंख्या है। आइये देखें कि आँकड़े किसकी ओर इशारा कर रहे हैं?

दुनिया की लगभग आधी आबादी (3 अरब लोग) ग्रीन हाउस गैसों के कुल उत्सर्जन का मात्र 7 प्रतिशत उत्सर्जन करती है, जबकि दुनिया के 7 प्रतिशत धनिक कुल प्रदूषण का 50 प्रतिशत उत्सर्जन करते हैं। अगर ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन का आँकलन कम्पनियों के आधार पर किया जाये तो पता चलता है कि दुनिया की मात्र 90 कम्पनियाँ 66 प्रतिशत ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन के लिए ज़िम्मेदार हैं!

जीव जगत का विनाश

ताज़ा शोध बताते हैं कि 12 प्रतिशत पक्षी, 23 प्रतिशत स्तनधारी प्राणी और 30 प्रतिशत जल-स्थल प्राणी विलुप्त होने की कगार पर हैं। दुनिया के मीठे पानी की मछलियाँ 50 प्रतिशत तक नष्ट हो चुकी हैं और हर साल 1 नदी समुद्र में मिलने से पहले ही सूख जा रही है।

प्राणी वैज्ञानिकों का कहना है कि न सिर्फ़ जीव-जन्तुओं की भिन्न जातियाँ बल्कि एक ही जाति के भीतर मौजूद विविधता का सम्पूर्ण जीवजगत के लिए ज़बरदस्त महत्व है। मसलन 1950 में भारत में धान की 30,000 किस्में थीं, आज हमारे यहाँ मात्र 10 किस्में ही उपयोग में हैं और वो भी बाहर की हैं! शायद ज़्यादातर लोगों को पता न हो कि इस विविधता के नष्ट होने का अर्थ है भोजन में पोषक तत्वों की कमी, खाद का नष्ट होना और फ़सलों की आकस्मिक तबाही जिससे भुखमरी भी पैदा हो सकती है। उदाहरण के लिए 1970 में धान का एक रोग फैला जिसने भारत से लेकर इण्डोनेशिया तक धान की फ़सल तबाह कर दी। इस रोग का इलाज ढूँढ़ने के लिए वैज्ञानिकों ने धान की 6237 किस्मों को परखा और उसमें केवल एक ऐसी किस्म थी जिसमें इस रोग से लड़ने की क्षमता थी।

समुद्र जैव पारिस्थितिकी का विनाश

जंगलों की तरह समुद्र भी धरती के फेफड़ों का काम करते हैं जो ऑक्सीजन हमें ज़िन्दा रखती है उसका 50 प्रतिशत उत्पादन समुद्र करता है और उसमें मौजूद सूक्ष्म पौधे (जिन्हें जीव विज्ञान की भाषा में फाइको प्लैंकटन कहते हैं जो नंगी आँखों से नहीं दिखायी पड़ते हैं।) 30 प्रतिशत कार्बन डाईऑक्साइड को सोख लेते हैं।

उपग्रह तस्वीरों से पता चलता है कि दुनियाभर में समुद्र में जगह-जगह 50 विशाल मृत समुद्र पैदा हो गये हैं! इसकी वजह पानी का बढ़ता तापमान और उसमें बढ़ती एसिड की मात्रा है।

समुद्र के बढ़ते तापमान के कारण कोरल रीफ़ तेज़ी से ख़त्म हो रही हैं। कोरल रीफ़ समुद्र के भीतर लाखों वर्षों में बन पाती हैं। ये चूने से बनी संरचनाएँ हैं जहाँ समुद्री जीव सबसे ज़्यादा संख्या और विविधता में पाये जाते हैं। कोरल के ख़त्म हो जाने का अर्थ है मछलियों व अन्य समुद्री जीवों का ख़त्म हो जाना। अल-निनो प्रभाव से (जिसकी वजह से समुद्र का तापमान 6 डिग्री बढ़ गया) हिन्द महासागर में 90 प्रतिशत कोरल रीफ़ ख़त्म हो चुकी हैं और इण्डोनेशिया में 82 प्रतिशत रीफ़ ख़तरे में हैं।

– तपीश

ढण्डारी बलात्कार व क़त्ल काण्ड

राजनीतिक शह प्राप्त गुण्डा गिरोह की दरिन्दगी की शिकार व जुल्मों के सामने हार न मानने वाली

बहादुर शहनाज़ को इंसाफ़ दिलाने के लिए गुण्डा–पुलिस–राजनीतिक गठजोड़ के ख़िलाफ़ विशाल लामबन्दी, जुझारू संघर्ष

लुधियाना के ढण्डारी इलाक़े में एक साधारण परिवार की 16 वर्षीय बेटी और बारहवीं कक्षा की छात्रा शहनाज़ को राजनीतिक शह प्राप्त गुण्डों द्वारा अगवा करके सामूहिक बलात्कार करने, मुक़दमा वापस लेने के लिए डराने-धमकाने, मारपीट और आख़िर घर में घुसकर दिन-दिहाड़े मिट्टी का तेल डालकर जलाये जाने के घटनाक्रम के ख़िलाफ़ पिछले दिनों शहर के लोगों, ख़ासकर औद्योगिक मज़दूरों का आक्रोश फूट पड़ा। इंसाफ़पसन्द संगठनों के नेतृत्व में लामबन्द होकर लोगों ने ज़बरदस्त जुझारू आन्दोलन किया और दोषी गुण्डों को सज़ा दिलाने के लिए संघर्ष जारी है। शहनाज़ और उसके परिवार के साथ बीता यह दिल कँपा देनेवाला घटनाक्रम समाज में स्त्रियों और आम लोगों की बदतर हालत का एक प्रतिनिधि उदाहरण है। मामले को दबाने और अपराधियों को बचाने की पुलिस-प्रशासलन से लेकर पंजाब सरकार तक की तमाम कोशिशों के बावजूद बिगुल मज़दूर दस्ता व अन्य जुझारू संगठनों के नेतृत्व में हज़ारों लोगों ने सड़कों पर उतरकर जुझारू लड़ी।

अगवा, बलात्कार व क़त्ल का दिल दहला देनेवाला घटनाक्रम

राजनीतिक शह प्राप्त एक गुण्डा गिरोह ने शहनाज़ को 25 अक्टूबर को स्कूल जाते समय अगवा किया था। जब उसके परिवार के लोग पुलिस के पास रिपोर्ट दर्ज करवाने गये तो उन्हें पुलिस के बेहद अमानवीय रवैये का सामना करना पड़ा। पुलिसवालों ने कहा कि रिपोर्ट दर्ज करवाकर क्यों बदनामी बटोरते हो, लड़की किसी के साथ भाग गयी होगी, अपने-आप वापस आ जायेगी। दो दिन बाद गुण्डों ने शहनाज़ को छोड़ दिया। सामूहिक बलात्कार का शिकार, शारीरिक और मानसिक तौर पर बहुत बुरी हालत में शहनाज़ 27 अक्टूबर की रात बारह बजे घर लौटी। अगले दिन माता-पिता शहनाज़ को लेकर पुलिस के पास गये तो फिर वही टालमटोल। एक चौकी इंचार्ज ने तो उनसे पचास हज़ार रुपये रिश्वत तक माँग ली। उन्हें एक चौकी से दूसरी चौकी दौड़ाया गया। बहुत भागदौड़ के बाद एफ़आईआर लिखी भी गयी तो बलात्कार की धारा नहीं लगायी गयी। शहनाज़ और उसके माता-पिता ने पुलिस से बहुत कहा कि उसका मेडिकल करवाया जाये। लेकिन पुलिस वाले आज-कल करते-करते टालते रहे और एक हफ़्ता निकाल दिया। एक हफ़्ते बाद हुए मेडिकल में बलात्कार होने की पुष्टि होने की सम्भावनाएँ बहुत कम रह जाती हैं। उनका वकील भी ख़रीद लिया गया। बहुत चालाकी के साथ जज के सामने शहनाज़ का बयान करवा दिया गया कि उसके साथ बलात्कार की कोशिश हुई है। वह यह नहीं समझ सकी "कोशिश" कहने से उसके बयान के अर्थ ही बदल जायेंगे। चार गुण्डों पर एफ़आईआर दर्ज हुई थी। तीन गिरफ़्तार हुए। गुण्डा गिरोह के बाक़ी गुण्डों ने शहनाज़ और उसके परिवार को केस वापस लेने के लिए डराया-धमकाया। शहनाज़ जब 31 अक्टूबर को घर में अकेली थी तो गुण्डों ने घर में घुसकर उसके हाथ-पैर बाँधकर, मुँह में कपड़ा ठूँसकर पीटा। अठारह दिन जेल में रहने के बाद बलात्कार व अगवा के तीन दोषी भी जमानत पर रिहा कर दिये गये। शहनाज़ और उसके परिवार को जान से मारने की धमकियाँ दी जा रही थीं। लेकिन उन्होंने केस वापस नहीं लिया। वे पुलिस प्रशासन के पास सुरक्षा माँगने गये। प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी को चिट्ठी लिखकर मदद माँगी। विभिन्न राजनीतिक पार्टियों से मदद माँगी। लेकिन कहीं से मदद नहीं मिली। चार दिसम्बर को माता-पिता इस मसले के सम्बन्ध में कचहरी गये थे। इसी दौरान गुण्डों ने घर में घुसकर शहनाज़ को मिट्टी का तेल डालकर आग लगा दी।

इस बर्बर घटना के बाद भी पुलिस-प्रशासन दोषियों का साथ देता रहा। बुरी तरह जली शहनाज़ के माता-पिता उसे बाइक पर बिठाकर फ़ोकल प्वाइण्ट थाने ले गये। वहाँ पुलिस वालों ने उनकी कोई बात सुनने और मदद करने से इनकार कर दिया। माता-पिता को शहनाज़ को बाइक पर बिठाकर ही सरकारी अस्पताल पहुँचाना पड़ा। शहनाज़ ने अस्पताल में जज को दिये बयान में जलाये जाने के सम्बन्ध में सात लड़कों (अगवा-बलात्कार केस सहित कुल आठ दोषी हैं) का नाम लिया। चारों तरफ़ से थू-थू होने के बाद चार गुण्डों को पकड़ा गया। बाक़ी आज़ाद घूमते रहे। इलाज के लिए पुलिस-प्रशासन या सरकार ने ज़रा भी मदद नहीं की। 90 प्रतिशत जल चुकी शहनाज़ को लुधियाना से पटियाला के रजिन्दरा अस्पताल रैफ़र कर दिया गया। वहाँ से चण्डीगढ़ के 32 सेक्टर अस्पताल भेज दिया गया। शहनाज़ को लुधियाना से सीधे प किसी अच्छे अस्पताल पहुँचाने और इलाज करवाने में परिवार की मदद की गयी होती तो शायद शहनाज़ बच जाती। चार दिन तक शहनाज़ मौत से जूझती रही। आठ दिसम्बर की रात उसकी मौत हो गयी। मौत से कुछ देर पहले उसने माता-पिता से कहा था – मुझे इंसाफ़ चाहिए...।

शहनाज़ – स्त्रियों पर अत्याचारों के ख़िलाफ़ संघर्ष का एक प्रतीक

शहनाज़ स्त्रियों पर जुल्मों के ख़िलाफ़ संघर्ष का एक प्रतीक बन गयी है। वह सभी स्त्रियों के सामने एक मिसाल क़ायम करके गयी है। अधिकतर स्त्रियाँ और उनके परिवार बलात्कार, अगवा, छेड़छाड़ आदि घटनाओं को सामाजिक बदनामी, मारपीट, जानलेवा हमले के डर, न्याय मिलने की नाउम्मीद आदि कारणों से छिपा जाते हैं। लेकिन हिम्मती ग़रीब परिवार और उनकी बहादुर बेटी शहनाज़ ने ऐसा नहीं किया। वह डटी रही, लड़ती रही, हार कर चुप नहीं बैठी। सोलह वर्ष की वह बहादुर लड़की सभी स्त्रियों, उत्पीड़ितों, ग़रीबों, आम लोगों के सामने एक मिसाल है। शहनाज़ को इंसाफ़ दिलाने के लिए गुण्डा-पुलिस-राजनीतिक गुण्डा गठजोड़ के ख़िलाफ़ जुझारू संघर्ष लड़कर इंसाफ़पसन्द लोगों ने उसे एक सच्ची श्रद्धांजलि दी है।

गुण्डा-पुलिस-राजनीतिकों के नापाक गठजोड़ के ख़िलाफ़ जुझारू संघर्ष, विशाल लामबन्दी

आठ दिसम्बर को कारख़ाना मज़दूर यूनियन, पंजाब ने प्रेम नगर, ढण्डारी खुर्द में लोगों की बड़ी मीटिंग बुलायी और पीड़ित परिवार को इंसाफ़ दिलाने की लड़ाई का ऐलान किया। इस मीटिंग में लगभग एक हज़ार कारख़ाना मज़दूर, दुकानदार, रेहड़ी लगाने वाले आदि लोग शामिल थे। कारख़ाना मज़दूर यूनियन के नेताओं और मोहल्ले के कुछ लोगों को शामिल करके 'ढण्डारी बलात्कार व क़त्ल काण्ड विरोधी संघर्ष कमेटी' बनायी गयी। यह तय किया गया कि अगले दिन पुलिस कमिश्नर के कार्यालय पर बड़ा धरना-प्रदर्शन किया जाये और माँग की जाये कि सभी दोषियों को तुरन्त गिरफ़्तार किया जाये, जल्द से जल्द चालान पेश करके केस फ़ास्ट ट्रेक कोर्ट में चलाया जाये। दोषियों को मौत की सज़ा हो। गुण्डा गिरोह की मदद करने के दोषी पुलिस अफ़सरों को जेल भेजा जाये और आपराधिक केस चलाकर सख़्त से सख़्त सज़ा दी जाये। पीड़ित परिवार को अधिक से अधिक मुआवज़ा दिया जाये। आम लोगों ख़ासकर स्त्रियों की सुरक्षा की गारण्टी की जाये। गुण्डा-पुलिस-राजनीतिक के नापाक गठबन्धन को तोड़ा जाये।

उसी रात लगभग 1 बजे शहनाज़ की मौत हो गयी। अगले दिन पुलिस कमिश्नर के कार्यालय पर प्रदर्शन नहीं हो पाया, लेकिन शहनाज़ के घर पर ही हज़ारों लोगों को इकट्ठा किया गया। कारख़ाना मज़दूर यूनियन के साथ बिगुल मज़दूर दस्ता, टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन, नौजवान भारत सभा और पंजाब स्टूडेण्ट्स यूनियन (ललकार) भी संघर्ष में आ गये। इलाक़े के लोगों से अपील की गयी कि मज़दूर काम पर न जायें, दुकानदार दुकानें बन्द रखें और इंसाफ़ के इस संघर्ष में शामिल हों। हज़ारों लोग प्रदर्शन में शामिल हुए। प्रशासन ने इलाक़े को पुलिस छावनी में बदल दिया। लोगों को प्रदर्शन बन्द करने के लिए कहा गया, लेकिन लोग डटे रहे। गली-गली में नाके लगाये खड़ी पुलिस ने बहुत बड़ी संख्या में मज़दूरों को प्रदर्शन-स्थल पर पहुँचने नहीं दिया। लेकिन बहुत मज़दूर, जिनमें स्त्रियाँ भी शामिल थीं, पुलिस से झगड़कर प्रदर्शन-स्थल पर पहुँचे। दहशत के ज़रिये प्रदर्शन को बिखराने में नाकाप रहने के बाद पुलिस ने चुनावी पार्टियों के दलाल नेताओं और दलाल धार्मिक नेताओं का सहारा लिया। दलालों का एक बड़ा झुण्ड प्रदर्शन ख़त्म करवाने की कोशिश में लगा रहा। इनका पूरा ज़ोर था कि लाश आने से पहले प्रदर्शन बन्द हो जाये। दलालों ने शहनाज़ की माँ को भरमाने की कोशिश की। कांग्रेस के एक मुस्लिम नेता ने इसे अपनी क़ौम का मसला बताकर शहनाज़ की माँ को प्रदर्शन बन्द करवाने के लिए कहा। लेकिन शहनाज़ की माँ ने उसे करारा जवाब दिया कि कि प्रदर्शन बन्द नहीं होगा। दलालों ने मज़दूर नेताओं को असामाजिक तत्व, आतंकवादी आदि कहकर बदनाम करने की कोशिश की। शहनाज़ की मौत के लिए पीड़ित परिवार को ही दोषी ठहराने की कोशिशें हुईं। इन दल्लों को मुँहतोड़ जवाब देते हुए लोग संघर्ष में डटे रहे।

लेकिन सरकार और पुलिस की दोषियों को बचाने की साजिशें बन्द नहीं हुईं। पंजाब के उपमुख्यमन्त्री और गृह मन्त्री सुखबीर बादल ने 12 दिसम्बर को मीडिया में बयान दिया कि "मामले की सच्चाई कुछ और है"। इस बयान का अर्थ है कि नब्बे प्रतिशत जल चुकी, ज़िन्दगी-मौत की लड़ाई लड़ रही शहनाज़ का जज के सामने दिया बयान झूठा है। डेढ़ महीने से सुरक्षा और इंसाफ़ के लिए जूझ रहे पीड़ित परिवार के ज़ख़्मों पर सुखबीर बादल के बयान ने नमक छिड़क दिया। स्पष्ट हो चुका था कि भ्रष्ट पंजाब सरकार मामले को ग़लत रंगत देकर, कातिल-बलात्कारी गुण्डा गिरोह और उसकी पीठ थपथपाने वाले नेताओं को बचाना चाहती है। सुखबीर बादल के बयान के ख़िलाफ़ 14 दिसम्बर को लुधियाना के तीन हज़ार से अधिक लोगों ने, जिनमें मुख्य तौर पर मज़दूर शामिल थे, ने 'संघर्ष कमेटी' और मज़दूर-नौजवान-छात्र संगठनों के नेतृत्व में नेशनल हाइवे-1 (जी.टी. रोड) को ढाई घण्टे तक पूरी तरह जाम कर दिया। ढण्डारी इलाक़ा पुलिस छावनी में बदल दिया गया। हथियारबन्द पुलिस दस्ते प्रदर्शन के सामने तैनात कर दिये गये। पुलिस दहशत के ज़रिये प्रदर्शन के बिखराना चाहती थी। लेकिन लोग हिले नहीं। प्रशासन द्वारा इंसाफ़ की गारण्टी देने के बाद ही नेशनल हाइवे ख़ाली किया गया। यह सरकार, पुलिस-प्रशासन को एक चेतावनी

(पेज 9 पर जारी)

बहादुर शहनाज़ को इंसाफ़ दिलाने के लिए गुण्डा–पुलिस–राजनीतिक गठजोड़ के ख़िलाफ़ विशाल लामबन्दी, जुझारू संघर्ष

(पेज 9 से आगे)

थी। इसके बाद सरकार ने लीपापोती की कि सुखबीर बादल का बयान किसी अन्य मामले के बारे में था। इसके बाद आज़ाद घूम रहा एक और दोषी भी गिरफ़्तार कर लिया गया। अब बिन्दर, अनवर, अमरजीत, नियाज़, बल्ली, शहजाद, बब्बू और विक्की जेल में हैं।

इनके अलावा दो और व्यक्ति गिरफ़्तार किये गये हैं। पुलिस अब कह रही है कि इनमें से सुल्तान नाम का एक लड़का कह रहा है कि 25 से 27 अक्टूबर तक लड़की उसके साथ थी, न कि अगवा हुई थी। इस तरह गुण्डा–पुलिस–सियासी गठजोड़ अब झूठे गवाह खड़े कर रहा है। मसले को ग़लत रंगत देने की साजिशें जारी हैं। जाँच–पड़ताल दोषियों को बचाने की दिशा में चलायी जा रही है न कि उन्हें सज़ा करवाने के लिए। सरकार अपहरण, बलात्कार व क़त्ल के घटनाक्रम के प्रति लोगों का रोष कम करने के लिए इसे प्रेम कहानी बनाने की कोशिश कर रही है।

ऐसे हालात में कारखाना मज़दूर यूनियन, पंजाब ने टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन, बिगुल मज़दूर दस्ता, पंजाब स्टूडेण्ट्स यूनियन (ललकार) और नौजवान भारत सभा के साथ मिलकर 'ढण्डारी बलात्कार व क़त्ल काण्ड विरोधी संघर्ष कमेटी' का पुनर्गठन किया। 28 दिसम्बर को शहनाज़ को समर्पित विशाल श्रद्धांजलि समागम करने का ऐलान किया गया। लुधियाना सहित पंजाब के अन्य ज़िलों के शहरों-गाँवों में सघन मुहिम चलाकर लोगों को लामबन्द किया गया। लगभग दस हज़ार लोग श्रद्धांजलि समागम में पहुँचे। इस दिन सरकार ने ढण्डारी इलाक़े में पहले से भी कहीं अधिक पुलिस लगाकर दहशत का माहौल खड़ा किया। लेकिन इन कोशिशों और कड़ाके की ठण्ड के बावजूद लोगों का विशाल हुजूम इकट्ठा हुआ।

संघर्ष की अहम उपलब्धियाँ

आज समाज में स्त्रियों पर अत्याचार बढ़ते ही जा रहे हैं। बलात्कार, क़त्ल, छेड़छाड़, मारपीट, तेज़ाब फेंकने, अगवा, आदि के कारण ख़ौफ़नाक हालात पैदा हो चुके हैं। स्त्री विरोधी वहशी मर्द मानसिकता हर क़दम पर स्त्रियों को शिकार बना रही है। विशेष तौर पर सियासी सरपरस्ती में पलने वाले बेख़ौफ़ गुण्डा गिरोह स्त्रियों को अपनी हवस का शिकार बना रहे हैं। गली-गली, मुहल्ले-मुहल्ले में, स्कूलों-कॉलेजों के गेटों पर, यह गुण्डा गिरोह दहशत फैला रहे हैं। ऐसे समय में स्त्रियों सहित सभी आम लोगों को अपनी रक्षा के लिए ख़ुद आगे आना होगा। एकजुट होकर हमें दमनकारी, जालिम हुक्मरानों और उनके पाले हुए गुण्डा गिरोहों को ललकारना होगा। संगठित और जुझारू लड़ाई लड़नी होगी। इन हालात में यह संघर्ष काफ़ी महत्व रखता है। बेइंसाफ़ी की बुनियाद पर टिकी इस लुटेरी पूँजीवादी व्यवस्था से लड़कर लोग शहनाज़ और उसके परिवार को किस हद तक इंसाफ़ दिला पाने में कामयाब होंगे, यह तो आने वाला समय ही बतायेगा। लेकिन इस संघर्ष ने अब तक कई अहम उपलब्धियाँ हासिल की हैं।

इस संघर्ष ने शहनाज़ के सभी बलात्कारियों-कातिलों को जेल भिजवाने में कामयाबी हासिल की है। पुलिस व सरकार को अपराधियों की खुलेआम मदद करने से पैर पीछे खींचने पर मज़बूर होना पड़ा है। वरना गिरफ़्तार गुण्डे जल्द ही जमानत पर रिहा होकर बाहर आ जाते, पीड़ित परिवार पर फिर से कहर बरपाते। इस बात की पूरी सम्भावना थी कि पीड़ित परिवार को ही झूठे दोष लगाकर जेल में डाल दिया जाता।

इस संघर्ष ने इस घटनाक्रम की तरफ़ व्यापक जनता का ध्यान खींचा है। इस संघर्ष ने स्त्रियों पर होने वाले जुल्मों के मुद्दे को व्यापक स्तर पर उभारा है। इस संघर्ष ने गुण्डा–पुलिस–राजनीतिक गठजोड़ को जनता के सामने नंगा किया है और इसके ख़िलाफ़ एकजुट होकर लड़ने की ज़रूरत को लोगों के मनों में स्थापित किया है।

इस संघर्ष की एक बेहद अहम उपलब्धि यह रही कि इसने लोगों में पुलिस और गुण्डों की दहशत को तोड़ दिया। जनता के दुश्मनों में जनता की एकता की दहशत पैदा हुई है। वैसे तो पूरे समाज में ही गुण्डों और पुलिस की दहशत है लेकिन औद्योगिक मज़दूर आबादी वाले ढण्डारी इलाक़े में पुलिस और गुण्डों की बहुत ज़्यादा दहशत बनी हुई थी। दिसम्बर 2010 में हुए ढण्डारी काण्ड के दौरान लोगों को गुण्डों और पुलिस के बर्बर दमन का सामना करना पड़ा था। लूट-पाट, छुरेबाज़ी, मार-पीट का शिकार आम जनता जब सड़कों पर उतरी तो पुलिस ने गुण्डों को साथ लेकर लोगों को गोलियों से भूना था, बर्बर लाठीचार्ज किया था। लाठियों-तलवारों से लैस गुण्डों ने मज़दूरों को मारा-काटा था। मज़दूरों के घर जला दिये गये थे। बड़ी संख्या में मज़दूरों को जेल में बन्द कर दिया गया था। ढण्डारी काण्ड-2010 के ज़ख़्म अभी भरे नहीं थे। पुलिस और गुण्डों की दहशत अभी गयी नहीं थी। ऐसे में शहनाज़ को इंसाफ़ दिलाने के लिए गुण्डा-पुलिस-सियासी गठजोड़ के ख़िलाफ़ संघर्ष शुरू हुआ और लोगों की विशाल लामबन्दी करने में कामयाबी मिली। संघर्ष का यह पहलू बहुत महत्व रखता है। विभिन्न चुनावी पार्टियों के दलाल नेताओं सहित संघर्ष में तोड़फोड़ करने की कोशिश करने वाली कई रंगों की ताक़तों की जनविरोधी साजिशों को नाकाम करने में भी कामयाबी मिली।

यह एकजुट संघर्ष बताता है कि जनता जब एकजुट होकर ईमानदार, जुझारू और समझदार नेतृत्व में योजनाबद्ध ढंग से लड़ती है तो बड़े से बड़े जन-शत्रुओं को धूल चटा सकती है। लोगों को शहनाज़ के बलात्कार व क़त्ल के दोषियों को सज़ा दिलाने के लिए तो जुझारू एकता क़ायम रखनी ही होगी, बल्कि स्त्रियों सहित तमाम जनता पर क़ायम गुण्डा राज से रक्षा और मुक्ति की लड़ाई को आगे बढ़ाने के लिए इस एकता को और विशाल व मज़बूत बनाना होगा।

– लखविन्दर

इंसाफ़पसन्द लोगों की विशाल सभा ने दी बहादुर शहनाज़ को भावभीनी श्रद्धांजलि

ढण्डारी (लुधियाना) बलात्कार व क़त्ल काण्ड विरोधी संघर्ष कमेटी के आह्वान पर 28 दिसम्बर को कड़ाके की सर्दी व सरकार द्वारा पूरे ढण्डारी इलाक़े को पुलिस छावनी में बदलकर दहशत का माहौल खड़ा करने के बावजूद हज़ारों लोगों के विशाल हुजूम ने बलात्कार व हत्या की शिकार व गुण्डा गिरोह के ख़िलाफ़ जूझती हुई मर-मिटने वाली बहादुर शहनाज़ को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की। शहनाज़ के पिता मोहम्मद इलियास, माँ हुशनियारा खातून और अन्य रिश्तेदारों सहित संघर्ष कमेटी के सदस्यों ने शहनाज़ की तस्वीर पर फूलों का हार पहनाकर श्रद्धांजलि समागम की शुरुआत की। लोगों ने शहनाज़ की याद में दो मिनट का मौन रखा और "बहादुर शहनाज़ अमर रहे", "बलात्कारियों-कातिलों को फाँसी दो", "लोक एकता ज़िन्दाबाद", "गुण्डाराज मुर्दाबाद", "पंजाब सरकार मुर्दाबाद" आदि गगनभेदी नारों से गुण्डाराज को ललकारा। शहनाज़ को इंसाफ़ दिलाने के लिए, संघर्ष जारी रखने और गुण्डागर्दी ख़ासकर राजनीतिक सरपरस्ती में पलने वाली गुण्डागर्दी को जड़ से मिटाने के लिए जनान्दोलन खड़ा करने का संकल्प लिया गया। क्रान्तिकारी सांस्कृतिक मंच 'दस्तक' ने शहनाज़ को समर्पित जुझारू गीत पेश किये।

वक्ताओं ने कहा कि शहनाज़ जुल्म के सामने घुटने न टेकने की एक मिसाल है। वह स्त्रियों पर अत्याचारों के ख़िलाफ़ संघर्ष का एक प्रतीक है। वक्ताओं ने कहा कि हालाँकि सरकारी मशीनरी बलात्कारियों-कातिलों के बचाव में लगी हुई है लेकिन जनएकता के दम पर शहनाज़ और उसके परिवार को इंसाफ़ ज़रूर मिलेगा।

श्रद्धांजलि समागम को कारख़ाना मज़दूर यूनियन के अध्यक्ष लखविन्दर, टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन के अध्यक्ष राजविन्दर, पंजाब स्टूडेण्टस यूनियन (ललकार) के संयोजक छिन्दरपाल, नौजवान भारत सभा के नेता कुलविन्दर, बिगुल मज़दूर दस्ता के विश्वनाथ व स्त्री मुक्ति लीग की नमिता ने सम्बोधित किया। इनके अलावा श्रद्धांजलि समागम को मोल्डर एण्ड स्टील वर्कर्ज़ यूनियन के अध्यक्ष हरजिन्दर सिंह, टेक्नीकल सर्विसिज़ यूनियन के जमीर, अखिल भारतीय नेपाली एकता मंच के विनोद कुमार, मोल्डर एण्ड स्टील वर्कर्ज़ यूनियन के अध्यक्ष विजय नारायण आदि ने सम्बोधित किया।

पुलिसकर्मियों में व्याप्त घनघोर स्त्री–विरोधी विचार

अभी हाल ही में एक केस के सिलसिले में सिहानी गेट, गाज़ियाबाद पुलिस चौकी जाना हुआ। चौकी प्रभारी कृष्ण बलदेव ने स्त्रियों के बारे में अपने विचार रखे। उसके भोंडे और गलीज़ विचारों में कुछ नया नहीं था, इसलिए कोई विशेष हैरानी नहीं हुई। समाज में स्त्री विरोधी विचार वैसे तो हमेशा ही मौजूद रहते हैं, पर कभी–कभी वे भद्दे और वीभत्स रूप में अभिव्यक्त हो जाते हैं। यही कृष्ण बलदेव की अभिव्यक्तियों में दिखा। इन महोदय के अनुसार – "आजकल की लड़कियाँ बिगड़ रही हैं, फ़िल्में देखने जाती हैं।" आगे उसने कहा – "यौन उत्पीड़न के अधिकतर मामले तो फ़र्ज़ी होते हैं, महिलाओं द्वारा लगाये गये अधिकतर आरोप तो बेबुनियाद होते हैं और इनसे हमारा काम बढ़ जाता है।" एक केस पर चर्चा के दौरान इन जनाब का कहना था, "इस महिला के चारित्रिक पतन की हद देखिये, देवता तुल्य अपने ससुर पर मनगढ़न्त आरोप लगाकर उन्हें परेशान कर रही है, बेचारे रोज़ चौकी के चक्कर काट रहे हैं।"

बहरहाल, यह मामला केवल एक पुलिसकर्मी तक सीमित नहीं है। वर्ष 2012 में 'तहलका' पत्रिका ने एनसीआर के अलग–अलग इलाक़ों में पुलिस अफ़सरों से साक्षात्कार के दौरान पाया कि बलात्कार पीड़िताओं के बारे में अधिकांश अफ़सरों के विचार बेहद शर्मनाक थे। बलात्कार की घटनाओं में बढ़ोत्तरी का सारा ठीकरा इन महाशयों ने महिलाओं के ऊपर यह कहकर फोड़ दिया कि लड़कियों को आज़ादी देने का ही यह नतीजा है कि ऐसी घटनाएँ लगातार बढ़ रही हैं। उनके अनुसार 90 प्रतिशत महिलाएँ दुर्भावना से प्रेरित होकर और पैसे के लालच में बलात्कार के झूठे आरोप लगाती हैं। जनता की "सेवा" में सदैव तैयार खड़े इन सूरमाओं के गलीज़ विचारों का आलम तो यह था कि इनके अनुसार असली बलात्कार पीड़िताएँ तो कभी थाने में शिकायत दर्ज कराने आती ही नहीं। जिन महिलाओं का मक़सद धन उगाही होता है या जिनका चरित्र गिरा हुआ होता है केवल वही थाने में शिकायतें दर्ज कराती हैं।

जिन पुलिसकर्मियों का दिमाग़ इस क़दर घोर स्त्री–विरोधी विचारों से भरा हो, क्या उनसे स्त्री उत्पीड़न के मामलों में निष्पक्ष जाँच की उम्मीद की जा सकती है? कतई नहीं! हालाँकि यह मामला महज़ पुलिस महकमे में व्याप्त स्त्री–विरोधी मानसिकता का नहीं है, ये विचार तो समाज के पोर–पोर में रचे–बसे हुए हैं। यही नहीं, ख़ुद स्त्रियाँ भी इससे मुक्त नहीं हैं। स्त्रियों की एक बड़ी आबादी भी स्वयं पितृसत्ता के मूल्यों की वाहक है। इसी कारण से समाज में मौजूद स्त्री–विरोधी मानसिकता का प्रश्न स्त्री बनाम पुरुष के संघर्ष का प्रश्न नहीं है। यह प्रश्न तो मूलत: और मुख्यत: पितृसत्ता के उन मूल्यों के ख़िलाफ़ संघर्ष का है जिनकी जड़ें मानव सभ्यता के इतिहास में खोजी जा सकती हैं।

हज़ारों वर्ष पहले सामाजिक संगठन का ढाँचा मातृसत्तात्मक था। अतिरिक्त पैदावार के रूप में उपजी सम्पत्ति पर पुरुष के स्वामित्व के साथ ही सामाजिक संगठन का ढाँचा मातृसत्तात्मक से पितृसत्तात्मक में बदल गया। इसके साथ–साथ महिलाओं की भूमिका को केवल घरेलू कामों, बच्चा पैदा करने और उनके लालन–पालन तक सीमित कर देने और सामाजिक उत्पादन की दुनिया में उनकी भागीदारी की ग़ैर–ज़रूरत की सोच को पीढ़ी–दर–पीढ़ी समाज ने अपना लिया। ऐसा प्रतीत होने लगा जैसेकि स्त्री–पुरुष की ये भूमिकाएँ प्रकृति प्रदत्त हैं, जबकि सच्चाई तो यह थी कि सम्पत्ति की व्यवस्था के आविर्भाव के साथ ही स्त्रियों की गुलामी का भी आग़ाज़ हो गया।

जब तक स्त्रियों को सामाजिक उत्पादन से अलग रखकर केवल घरेलू कामकाज की चौहद्दियों तक क़ैद करके रखा जायेगा, तब तक स्त्रियों की दासता की बेड़ियाँ नहीं टूटेंगी। पूँजीवाद ने पूँजी के विस्तार की अपनी ज़रूरतों के लिए स्त्रियों को सामाजिक उत्पादन की दुनिया में काफ़ी हद तक तो खींच लिया है पर उनकी घरेलू दासता और पुरुष वर्चस्ववाद को ख़त्म नहीं किया। निजी सम्पत्ति सम्बन्धों पर टिकी व्यवस्था में यह सम्भव भी नहीं है। आर्थिक तौर पर स्वतन्त्र एक स्त्री (चाहे वह मज़दूर पृष्ठभूमि से हो या मध्यवर्गीय पृष्ठभूमि से) अपने घरेलू कर्तव्यों को पूरा करते हुए ही सामाजिक उत्पादन में भागीदारी कर सकती है। घरेलू कामों में उसकी ज़िम्मेदारी ज्यों–की–त्यों बने रहने के कारण ही स्त्रियों की आरक्षित श्रमशक्ति को पूँजीवाद काफ़ी सस्ती दरों पर ख़रीदता है। पूँजीवाद में स्त्रियाँ दोहरी गुलामी का शिकार हैं – एक तो पूँजी की गुलामी की और दूसरा पितृसत्ता की गुलामी की।

कृष्ण बलदेव और उसके जैसे लोग इन्हीं पितृसत्तात्मक मूल्यों को अभिव्यक्त करते हैं। मार्के की बात तो यह है कि वैसे ये मूल्य समाज में सतत मौजूद रहकर चुपचाप अपना काम करते रहते हैं, पर ये तमाम मूल्य नंगे और वीभत्स रूप में तभी अभिव्यक्त होते हैं, जब स्त्रियाँ अपनी स्वतन्त्रता और पहचान के लिए संघर्ष करते हुए पितृसत्ता को सीधे–सीधे चुनौती देती हैं। हालाँकि ऐसी अनगिनत अभिव्यक्तियाँ पितृसत्ता को बचाये रखने का कितना भी प्रयत्न क्यों न कर लें, इसका नाश निश्चित है। निजी सम्पत्ति और उस पर आधारित सम्बन्धों के ख़ात्मे की तरह ही पितृसत्ता का ख़ात्मा भी अवश्यम्भावी है।

– श्वेता

मुनाफ़े की व्यवस्था में बेअसर हो रही दवाएँ

(पेज 1 से आगे)

तीन–तीन औरतें अपने नवजात बच्चों को लेकर बैठी हैं। जिन्हें बेड पर जगह नहीं मिलती, उनको ज़मीन पर चादर बिछाकर दिन काटने पड़ते हैं। अस्पतालों की हालत का अन्दाज़ा यूनीसेफ़ द्वारा राजस्थान के ज़िला अस्पतालों पर किये एक अध्ययन से हो जाता है जिसके अनुसार 70 प्रतिशत अस्पतालों में पानी दूषित था, हाथ धोने के लिए बने वाशबेसिनों में से 78 प्रतिशत पर हाथ धोने के लिए साबुन ही नहीं था, 67 प्रतिशत गुसलख़ाने और पाख़ाने मानवीय प्रयोग के लायक नहीं थे। यह वास्तविकता 'स्वच्छ भारत' के ड्रामों के साथ भी ख़त्म नहीं होने वाली। ये सभी हालात रोगाणु–रोधक दवाओं को बेअसर करने वाले बैक्टीरिया के फैलने के लिए बेहद अनुकूल माहौल पेश कर रहे हैं और डॉक्टरों की यह चेतावनी ऐसे ही नहीं है, क्योंकि अगर एक बार ऐसे बैक्टीरिया का फैलना शुरू हो जाता है तो इसको रोकना आसान नहीं होगा।

सर गंगा राम अस्पताल, नई दिल्ली के बच्चों के विशेषज्ञ डॉक्टरों के अनुसार वहाँ रैफ़र होते बच्चों में से लगभग शत–प्रतिशत ही ऐसे बैक्टीरिया का शिकार होते हैं। उनके अनुसार यह पिछले कुछ वर्षों से ही शुरू हुआ है और यह स्थिति बड़ी डरावनी है। भारत के आगे यह ख़तरा खड़ा होने के साथ नवजात बच्चों की मृत्यु–दर जोकि पहले ही आज के मेडिकल विज्ञान के पैमानों और मानवीय विकास के स्तर के अनुसार बहुत ज़्यादा है, फिर से बढ़ने के आसार बनते दिखायी दे रहे हैं। वैसे भी भारत में यह दर नीचे आने का कारण कोई सामाजिक या आर्थिक बदलाव नहीं था, जिसने लोगों के जीवन–हालात को बेहतर कर दिया हो, जैसेकि पश्चिमी मुल्क़ों में हुआ है। पिछले वर्षों में नवजात बच्चों की मृत्यु दर अगर कुछ नीचे आयी थी तो इसका कारण नवजात बच्चों में बैक्टीरिया की छूत को क़ाबू करने में रोगाणु–रोधक दवाओं के प्रयोग पर निर्भरता है। अगर ये दवाएँ बे–असर होनी शुरू हो जाती हैं तो नवजात बच्चों की मृत्यु–दर का फिर से बढ़ना स्वाभाविक है। सिर्फ़ बच्चे ही नहीं, बड़ों में भी इन बैक्टीरिया द्वारा होने वाली बीमारियों के फैलने का ख़तरा है। सबसे बड़ा ख़तरा टीबी के इलाज के लिए इस्तेमाल की जाने वाली मौजूदा दवाओं के बे–असर हो जाने का है, जिसके बारे में कई डॉक्टरों का तो यहाँ तक कहना है कि आने वाले नज़दीकी भविष्य में भारत में टीबी का इलाज कर पाना असम्भव हो जायेगा और हम एक बार फिर उस युग में पहुँच जायेंगे, जब टीबी की बीमारी हो जाने का मतलब कई महीनों के लिए लहू मिली बलगम थूकते हुए मौत का इन्तज़ार करना होता था।

भारत समेत तीसरी दुनिया के लगभग सभी देशों में रोगाणु–रोधक दवाओं के बे–असर होते जाने की संख्या विकसित देशों के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा है। इसका एक कारण तो इन देशों में रोगाणु–रोधक दवाओं का अन्धाधुन्ध प्रयोग है जिसका मुख्य कारण अशिक्षित झोलाछाप डॉक्टर और कैमिस्टों द्वारा आम लोगों को ये दवाएँ देने पर कोई रोक–टोक का न होना है, दूसरा बाकायदा शिक्षित डिग्रीधारक डॉक्टर भी इन दवाओं के वैज्ञानिक प्रयोग के प्रति बहुत सचेत नहीं हैं और कम्पनियों की तरफ़ से दवाएँ लिखने के लिए दिये जाते कमीशन उनमें से बहुतों को सचेत होने भी नहीं देते। इसके साथ ज़रूरी लैब टेस्टों की उपलब्धता न होना या बहुत महँगा होना भी इन दवाओं के ग़ैर–ज़रूरी प्रयोग को प्रोत्साहित करता है। विकसित मुल्क़ों में भी रोगाणु–रोधक दवाओं का अनावश्यक प्रयोग कोई कम नहीं है। विकसित यूरोपीय देशों में इन दवाओं का प्रयोग आधे मामलों में अनावश्यक होता है, परन्तु इन मुल्क़ों के मुक़ाबले भारत जैसे मुल्क़ों में ऐसे बैक्टीरिया के फैलने का ख़तरा अधिक है, क्योंकि ऊपर ज़िक्र किये गये हालात, जो रोगाणु–रोधक दवाओं को बे–असर करने वाले बैक्टीरिया के सामने आने के बाद उनके फैलने के लिए और ज़्यादा माफ़िक़ होते हैं, भारत जैसे देशों में ही मौजूद होते हैं। विकसित मुल्क़ों में पिछले एक दशक के दौरान इन दवाओं के अनावश्यक प्रयोग पर लगाम कसी गयी है। कुछ समय पहले अमरीका में ओबामा सरकार ने इसको राष्ट्रीय एमरजेंसी ऐलान कर इस समस्या को क़ाबू करने के लिए क़दम उठाये हैं। विकसित मुल्क़ों में बिक्री नीचे आने के कारण दवा–कम्पनियों का पूरा ज़ोर अब विकासशील देशों में बिक्री बढ़ाने पर लगा हुआ है। ऊपर से पहले ही बेअसर क़ानूनी और प्रशासनिक प्रबन्ध मौजूदा नवउदारवादी दौर में और भी ढीला कर दिया गया है, जिसके कारण भारत जैसे देशों में इस समस्या को कण्ट्रोल करने के लिए कोई क़दम उठाया जायेगा, इसकी सम्भावना कम ही दिखायी दे रही है। और तो और, यहाँ तो गंगा उलटी बहती है। मात्र एक वर्ष पहले दिल्ली के अस्पतालों में ऐसे ही एक बैक्टीरिया के मिलने की रिपोर्ट एक मेडिकल मैगज़ीन में छपी जिसको भारत के मीडिया और राजनैतिक पार्टियों ने 'राष्ट्रीय सम्मान' पर हमला बना दिया। होना तो यह चाहिए था कि इन मामलों की तह तक पहुँचा जाता, क्योंकि ऐसे बैक्टीरिया का मिलना पूरी मानवता के लिए ख़तरा बन सकता है। परन्तु नहीं, भारत के पूँजीपतियों के लिए यह 'राष्ट्रीय सम्मान' का सवाल बन गया, क्योंकि इस रिपोर्ट के साथ दिल्ली और अन्य शहरों के बड़े–बड़े कारपोरेट अस्पतालों में 'मेडिकल टूरिज़्म' के कारोबार से होते मुनाफ़े को ख़तरा खड़ा हो सकता था। यह है धनाढ्यों का 'राष्ट्रीय सम्मान' जो मण्डी में से पैदा होता है और मण्डी के साथ बढ़ता–फूलता है। भारत की चुनी हुई लोकतान्त्रिक सरकार जो समूचे देश के निवासियों के लिए ज़िम्मेदार होती है, धनाढ्यों के 'राष्ट्रीय सम्मान' पर चोट पड़ने के साथ झटपट से सक्रिय हो गयी और रिपोर्ट को झुठलाने के 'नेक काम' में जुट गयी। परन्तु सच्चाई तो सामने आनी ही है, अब इस ताज़ा रिपोर्ट ने फिर रोगाणु–रोधक दवाओं को बेअसर करने वाले बैक्टीरिया के फैलने की सच्चई को ज़ाहिर कर दिया है, परन्तु मोदी सरकार मनमोहनी–सरकार से दो क़दम आगे जायेगी, पीछे नहीं।

बाक़ी मामला सिर्फ़ मनुष्य में इन दवाओं के अनावश्यक प्रयोग का ही नहीं है, पशुपालन और पोल्ट्री में इन दवाओं का बहुत बड़े स्तर पर प्रयोग होता है। पोल्ट्री में मुर्गों को डाली जाने वाली फ़ीड में ऐण्टीबायोटिक्स का प्रयोग इसलिए होता है क्योंकि इसके साथ कम खुराक से ही मुर्गों का वज़न बढ़ाया जा सकता है। इससे खुराक पर होने वाला ख़र्चा लगभग 30 प्रतिशत कम हो जाता है, नतीजा मुनाफ़े की प्रतिशत अधिक हो जाती है। पूँजीवादी ढाँचे में जब लाभ ही सारी उत्पादक गतिविधियों का मक़सद बन जाता है, तब फिर मानवता किस को याद रहनी है।

– डॉ. अमृत

प्रवासी स्त्री मज़दूर : घरों की चारदीवारी में क़ैद आधुनिक ग़ुलाम

अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) के अनुसार विश्व स्तर पर होने वाले मज़दूरों के प्रवास में स्त्री मज़दूरों का हिस्सा आधे के बराबर है। लेकिन श्रम के चरित्र के निर्धारण में प्रवासी स्त्री मज़दूरों के पास विकल्प न के बराबर है और ये जिस देश में जाती हैं वहाँ भी श्रम विभाजन में लिंग भेद का प्रत्यक्ष सामना करती हैं। उनके हिस्से वही काम आता है जिसे परम्परागत रूप से औरतों के काम का दायरा समझा जाता है–साफ़-सफ़ाई, खाना बनाना, कपड़े धोना, बच्चों-बुज़ुर्गों की देखभाल आदि घरेलू कामकाज। घरेलू श्रम, श्रम का सबसे अनुत्पादक, उबाऊ और थकाने वाला स्वरूप होता है। घरों में मानो यह प्राकृतिक तौर पर स्थापित है कि ये काम घर की औरतें ही करेंगी। लेकिन आज पूँजीवाद के भूमण्डलीकरण के इस दौर में धनी देशों का एक बड़ा तबक़ा और विकासशील देशों का भी एक तबक़ा निजीकरण और नवउदारवादी नीतियों का फ़ायदा उठाकर जीवन के सारे ऐशो-आराम और ऐश्वर्य के मज़े लूट रहा है। वह तबक़ा अपने वर्ग की औरतों के लिए 'सापेक्षिक' आज़ादी ख़रीदने की क्षमता रखता है और उन्हें इन घरेलू कामकाज से मुक्त करने के लिए दूसरों का श्रम ख़रीदता है। जैसाकि पहले ही कहा गया है कि घरेलू श्रम, श्रम का सबसे अनुत्पादक, बर्बर, उबाऊ और थकाने वाला स्वरूप है, लेकिन बाहर से ख़रीदे जाने पर अक्सर यह बर्बरता का भीषणतम रूप अख़्तियार कर लेता है। श्रम का यह स्वरूप अपने घरेलू दायरे की वजह से सर्वाधिक असुरक्षित और असंगठित क्षेत्र बनकर रह जाता है। घरेलू श्रम की सुरक्षा के लिए क़ानून न के बराबर हैं और जो हैं भी उनका लागू होना कठिन है।

घरेलू श्रम के रूप में प्रवासी मज़दूरों की स्थिति और भी असुरक्षित हो जाती है। सभी विकसित देशों में आप्रवासन क़ानूनों के ज़्यादा कठोर होने की वजह से ये घरेलू मज़दूर अपने मालिकों से पूरी तरह बँधे होते हैं और बचकर भाग निकलने की स्थिति में उन्हें देशनिकाला का सामना करना पड़ता है। दूसरे देश जाकर काम करने के लिए वीज़ा, पासपोर्ट और यात्रा में होने वाले ख़र्चे के लिए ये अक्सर स्थानीय सूदख़ोरों से भारी क़र्ज़ लेते हैं जिसकी भरपाई नहीं होने पर इनके लिए अपने देश वापस जाना बेहद कठिन होता है। उन्हें पता होता है कि उनकी नौकरी घर के छोटे भाई-बहनों या बेटे-बेटियों के भोजन का, बूढ़े या बीमार माँ-बाप के पोषण-इलाज का एकमात्र ज़रिया है। इसलिए मालिकों द्वारा दी जाने वाली शारीरिक-मानसिक प्रताड़नाओं को सहने के अलावा इनके पास कोई और चारा नहीं रहता। वैसे तो खाड़ी देशों से लेकर विकसित देशों तक सभी जगह प्रवासी मज़दूरों की स्थिति ग़ुलामों की तरह ही है। लेनिन ने 1913 में एक लेख लिखा था 'सभ्य यूरोपीय और बर्बर एशियाई', जिसमें तथाकथित सभ्य यूरोपीय समाज के ऊपर कटाक्ष किया था। इसमें उन्होंने बताया कि रंगून में एक ब्रिटिश कर्नल ने घर में काम करने वाली एक 11 साल की लड़की का बलात्कार किया था। इसके बाद जज ने कर्नल को ज़मानत दे दी और कर्नल ने अपने ख़रीदे गवाहों से यह सिद्ध किया कि वह 11 साल की लड़की वेश्या है और फिर जज ने कर्नल को केस से पूरी तरह बरी कर दिया।

घर में काम करने वाले मज़दूरों की स्थिति हमेशा से ही ख़राब रही है, लेकिन आज जब पूँजीवाद अपने सबसे अनुत्पादक और परजीवी चरण में पहुँच गया है और इसने मानवीय मूल्यों के क्षरण और पतन की सारी सीमाएँ तोड़ दी हैं तो इन परिस्थितियों में समाज का सर्वाधिक कमज़ोर और अरक्षित हिस्सा जैसे बच्चे, औरतें और घरों में काम करने वाले आदि इस क्षरण और पतन का शिकार सबसे ज़्यादा होता है। घरों में काम करने वाले स्त्री-पुरुषों के साथ मार-पीट, गालियाँ, यौन उत्पीड़न बेहद सामान्य है लेकिन पिछले एक दशक से स्त्री मज़दूरों में जो ज़्यादातर घरेलू नौकरानी का काम करती हैं, उनमें काम की जगह से भागने के दौरान मौत या आत्महत्या की घटनाएँ बहुत अधिक बढ़ी हैं। इस उत्पीड़न से बच निकली स्त्रियों के लिए लेबनान तथा यूरोप के कई देशों में कुछ आश्रय गृह बने हैं। ब्रिटेन के आश्रयगृह में रहने वाली एक औरत का कहना है कि वह भाग्यशाली है कि वह बच निकली लेकिन उसके जैसी हज़ारों-हज़ार ऐसी औरतें हैं जो चुपचाप यह अत्याचार और उत्पीड़न झेल रही हैं और उनके पास बच निकलने का कोई रास्ता भी नहीं है।

आइएलओ के अनुसार स्त्री मज़दूरों के प्रवास और घरेलू श्रम के बीच स्पष्ट सम्बन्ध है। प्रवासी मज़दूर औरतें मुख्यत: घरों में काम करने के लिए विदेश जाती हैं। भारत, चीन, फ़िलिपींस, श्रीलंका, कम्बोडिया, बर्मा, सब-सहारा अफ़्रीका के देशों से मज़दूर स्त्रियाँ खाड़ी देशों, चीन, मलेशिया, सिंगापुर, थाइलैण्ड आदि देशों में घरेलू नौकरानी का काम करने के लिए जाती हैं तथा अमेरिका में इन देशों के अलावा भारी तादाद में लातिन अमेरिका के देशों से औरतें घरेलू काम के लिए जाती हैं। इसके अलावा कई औरतों को घरेलू काम दिलाने का वायदा करके ले जाया जाता है और उन्हें जबरन वेश्यावृत्ति में धकेल दिया जाता है। मानव तस्करी की शिकार औरतें भी वेश्यावृत्ति के जाल में फँस जाती हैं।

खाड़ी देशों में कम से कम 146,000 प्रवासी घरेलू कामगार हैं जिनमें से ज़्यादातर एशिया और अफ़्रीका के देशों से हैं। अन्य प्रवासी मज़दूरों की तरह ये घरेलू मज़दूर औरतें भी अपने मालिकों से 'कफ़ाला व्यवस्था' से बँधी होती हैं। इस व्यवस्था के अनुसार अपना कॉन्ट्रैक्ट पूरा होने तक मज़दूर अपने मालिक या एजेण्ट से बँधा होता है। वह किसी भी हालत में काम नहीं छोड़ सकता, न ही कॉन्ट्रैक्ट तोड़ सकता है। यहाँ तक कि अपने देश वापस आने की भी इजाज़त मालिक की रज़ामन्दी पर ही मिलती है। इस व्यवस्था की वजह से ज़्यादातर मज़दूर औरतें हिंसा, उत्पीड़न और अत्याचार भरे माहौल में जकड़कर रह जाती हैं। 'कफ़ाला व्यवस्था' संयुक्त अरब अमीरात में आने वाले सभी स्त्री-पुरुष मज़दूरों पर लागू होती है, लेकिन घर की चारदीवारी में बन्द किसी मज़दूर औरत को यह व्यवस्था बिल्कुल अलगाव में डाल कर, निराश, हताश और असुरक्षित कर देती है। ह्यूमन राइट वाच (एचआरडब्ल्यू) ने संयुक्त अरब अमीरात में घरेलू काम करने वाली 99 औरतों का साक्षात्कार लिया गया था, इस रिपोर्ट के अनुसार विश्व के सबसे अमीर देश में इन घरेलू मज़दूर औरतों को बिना आराम लगभग 21 घण्टों तक काम करना पड़ता है, बेहद कम या लगभग न के बराबर भुगतान किया जाता है, ज़्यादातर को खाने को पर्याप्त नहीं मिलता, पिटाई आम बात है, कहीं भी आने-जाने पर पाबन्दी होती है, कइयों का यौन उत्पीड़न होता है और लगभग सभी का पासपोर्ट ज़ब्त कर लिया जाता है। मज़दूर अधिकारों के हनन और अपनी 'कफ़ाला व्यवस्था' के लिए कुख्यात संयुक्त अरब अमीरात अब अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रबन्ध मण्डल (गवर्निंग बोर्ड) का प्रभावी सदस्य होने जा रहा है।

गार्डियन अख़बार के डैन मैकडगॉल ने मध्य एशिया से लेकर ब्रिटेन तक में घरेलू स्त्री मज़दूरों के शोषण और उत्पीड़न पर एक रिपोर्ट बनायी है, जिसमें उन्होंने दिखाया है कि घरेलू स्त्री मज़दूरों की मृत्यु की बढ़ती घटनाएँ जिसे मध्य एशिया की सरकारें आत्महत्या कहकर केस बन्द कर देती है, वास्तव में वह या तो मालिकों द्वारा की गयी हत्या होती है या बेहद असह्य, बर्बर और अमानवीय काम की परिस्थितियों से बचकर भागने की कोशिश में हुई मौत होती है। यदि ये किसी तरह भाग भी निकलती हैं तो पुलिस इन्हें पकड़कर वापस मालिकों तक पहुँचा देती हैं। इसके अलावा यहाँ नौकरों के लिए कोई श्रम क़ानून नहीं है। 2012 में एक इथियोपियाई नौकरानी को लेबनान में सड़क पर बुरी तरह पीटा गया, एजेण्ट उसे ज़बरन वापस भेजना चाहते थे। राहगीर बस देख रहे थे, लेकिन कोई भी इस महिला को बचाने के लिए आगे नहीं आया। पुलिस द्वारा अस्पताल पहुँचाने के दो दिनों बाद इस महिला ने अस्पताल में आत्महत्या कर ली। वह महिला वापस अपने देश नहीं जा सकती थी और कफ़ाला व्यवस्था की वजह से वह कहीं और काम नहीं कर सकती थी। समझा जा सकता है कि 'कफ़ाला व्यवस्था' मज़दूरों को किस कदर हताश-निराश छोड़ देती है। मगर यह व्यवस्था यदि हट भी जाये तो भी घरेलू मज़दूरों की स्थिति में ख़ास परिवर्तन की अपेक्षा नहीं की जा सकती है, क्योंकि मध्य एशिया में घरेलू मज़दूरों के लिए कोई क़ानूनी अधिकार नहीं हैं।

यूरोप में मज़दूरों के लिए दर्ज क़ानूनी अधिकार के सम्बन्ध में भी प्रवासी मज़दूरों की स्थिति को लेकर गहरी उदासीनता है और प्रवासी घरेलू मज़दूरों की चर्चा न के बराबर है। यूरोप में भी घरेलू मज़दूरों की स्थिति भी विश्व के अन्य हिस्सों जैसी ही हैं, बर्बर, अमानवीय ग़ुलामों सी। वर्तमान समय में ब्रिटेन में घरेलू मज़दूरों की माँग विश्व के किसी भी हिस्से से सबसे ज़्यादा है। डैन मैकडगॉल की ही रिपोर्ट के अनुसार ब्रिटेन में 86 प्रतिशत घरेलू मज़दूरी करने वाली प्रवासी स्त्रियों को 16 घण्टे से ज़्यादा काम करना पड़ता है, 71 प्रतिशत को भोजन न के बराबर मिलता है, 32 प्रतिशत के पासपोर्ट जब्त कर लिये गये हैं और 32 प्रतिशत के साथ शारीरिक और यौन उत्पीड़न होता है।

मई-जून 2014 में लातिन अमेरिका के ग़रीब और पिछड़े देश जैसे एल सल्वादोर, होंडुरास आदि देशों में माफ़िया और एजेण्टों ने यह अफ़वाह उड़ा दी कि अमेरिकी सरकार छोटे बच्चों वाली और गर्भवती महिलाओं के प्रति सहानुभूति दर्शाते हुए उन्हें अमेरिकी नागरिकता दे रही है। ग़रीबी और बेरोज़गारी की मार झेल रही कई लातिनी महिलाएँ बेहतर ज़िन्दगी की उम्मीद में उनके पास जो कुछ भी था, उसे एजेण्ट के कमीशन और यात्रा के ख़र्चे पर फूँककर अमेरिका-मेक्सिको बॉर्डर पार करने चली आयीं। यहाँ आकर उन्हें सच्चाई का पता चला और अब वे अधर में हैं। यदि वे वापस चली भी गयीं तो उनके पास कुछ भी बचा नहीं है। अब पकड़े जाने पर उनके पास अमेरिका में रहने का कोई उपाय नहीं। वहीं अचानक से आयी औरतों और बच्चों की इस बाढ़ को देखकर ओबामा ने सीमा क्षेत्र पर सुरक्षा और सख़्त करने का ऐलान किया है।

लातिन अमेरिका से आयी ग़ैर-क़ानूनी प्रवासी औरतों की जीवन परिस्थितियाँ भी पुरुषों के समान ही कठिन होती हैं, लेकिन इस आबादी के बड़े हिस्से को विकल्पहीनता की स्थिति में या ज़बरदस्ती वेश्यावृत्ति या नशीले पदार्थों की बिक्री के व्यापार में धकेल दिया जाता है। ग़ैर क़ानूनी आप्रवासी मज़दूर जिसमें औरतें भी शामिल हैं सर्वाधिक श्रमसाध्य काम करते हैं और उन्हें बेहद कम या न के बराबर मेहनताना मिलता है।

अमेरिका में भी घरेलू मज़दूरों की स्थिति विश्व के बाक़ी हिस्सों जैसी ही है। यहाँ भी घरेलू काम ज़्यादातर फ़िलिपींस, इण्डोनेशिया, अफ़्रीका और लातिन अमेरिका से आयी औरतें ही करती हैं। कई ऐसी घटनाएँ सामने आयी हैं जिनमें घरेलू मज़दूरों को बिना पगार क़ैद करके सालों काम करवाया गया। ऐनी जॉर्ज नाम की एक महिला ने एक ग़ैर-क़ानूनी प्रवासी महिला को 5 सालों तक अपने बँगले में क़ैद कर ग़ुलामों की तरह खटाया था। यह कोई अकेली घटना नहीं है, इसके अलावा प्रवासी औरतें जो क़ानूनी तौर पर घरों में काम करती हैं, उनकी स्थिति कोई ख़ास बेहतर नहीं है। ये भी बिना छुट्टी पूरे-पूरे सप्ताह 16 से 18 घण्टे काम करती हैं, खाने को कम और सोने की उचित जगह भी नहीं मिलती है।

28 फ़रवरी 2014 को हाँगकाँग शहर में सैकड़ों प्रवासी घरेलू स्त्री मज़दूरों ने अपने अधिकारों के लिए एक प्रदर्शन किया। आईएलओ की रिपोर्ट के अनुसार पूरे विश्व में घरेलू मज़दूरों के मात्र 10 प्रतिशित हिस्से को न्यूनतम मज़दूरी मिलती है। जापान और कोरिया जैसे देशों में जहाँ न्यूनतम मज़दूरी लागू की जाती है, वहाँ भी घरेलू मज़दूर न्यूनतम मज़दूरी के दायरे से बाहर रह जाते हैं। वैसे घरेलू मज़दूर जो किसी एक मालिक के लिए काम नहीं करते और जो मालिक के साथ नहीं रहते, उनके लिए अपने क्षेत्र के बाक़ी मज़दूरों के साथ मिलकर न्यूनतम मज़दूरी और काम की परिस्थितियों में सुधार के लिए संघर्ष कर पाना थोड़ा आसान होगा। लेकिन किसी दूसरे देश से आकर 24 घण्टे मालिक के साथ रहने वाली प्रवासी स्त्री मज़दूरों की स्थिति बेहद कठिन होती है, क्योंकि वे समाज के बाक़ी हिस्सों से कटी हुई होती है। यदि कोई सम्पर्क भी हो तो भाषाई और संस्कृति भेद की वजह से दूरी बनी रहती है।

यह व्यवस्था जो ग़रीबों को अपनी जगह-ज़मीन से उजड़कर अनजान शहर और देश की ओर प्रवास करने के लिए मजबूर करती है, मज़दूर के शरीर के एक-एक कतरे को निचोड़ने के लिए रोज़ नये-नये दाँत तेज़ करती है, वह एक-दो क़ानून बना भी दे तो वह हाथी के दिखाने के दाँत होंगे। इसके अलावा घर की चारदीवारी के अन्दर किसी भी क़ानून का प्रभावी ढंग से लागू हो पाना असम्भवप्राय है। कहा जा सकता है कि इन क़ानूनों की स्थिति भी भारत में दहेज़ या घरेलू हिंसा के ख़िलाफ़ बने क़ानूनों की तरह ही होगी। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि हक़ों के लिए लड़ा नहीं जाये। पहले तो इन क़ानूनों को बनाने के लिए संघर्ष करना ही होगा, इस असुरक्षित, घरों में क़ैद मज़दूर आबादी को क़ानूनी हक़ के दायरे में लाया जाना बेहद ज़रूरी है।

जब तक ऐसा कोई समाज अस्तित्व में नहीं आता जो घरेलू काम से औरतों को मुक्त नहीं करता और इन कामों को घर की चारदीवारी से निकालकर समाज की ज़िम्मेदारी नहीं बना देता, घरेलू दायरे में होने वाले उत्पीड़न या हिंसा से समाज को और औरतों को मुक्त नहीं किया जा सकता। हमें लेनिन के उस कथन को नहीं भूलना चाहिए, जिसमें उन्होंने कहा था कि औरतों की मुक्ति तब तक सम्भव नहीं जब तक उन्हें चूल्हे-चौके और बच्चों के परवरिश से मुक्त नहीं किया जाता। इन सारे कामों के पूरा करने की ज़िम्मेदारी समाज को लेनी होगी, तब ही सही मायने में औरतों की मुक्ति की ज़मीन तैयार होगी। 1917 की रूस की सर्वहारा क्रान्ति ने यह कर दिखाया था, औरतों को चूल्हे-चौके की ग़ुलामी से मुक्त किया और कई ऐसे स्त्री विरोधी क़ानूनों को ख़त्म कर नये क़ानून बनाये गये और उन्हें लागू किया गया जिससे सही मायनों में औरतों को समाज में समान हक़ और अधिकार मिले। औरतें सही मायने में आज़ाद हुईं।

– लता

अमेरिकी सत्ताधारियों के पापों का बोझ ढोते सैनिक

"मेरा शरीर एक पिंजरा बन चुका है, दर्द और लगातार तकलीफ़ों का एक स्रोत बन चुका है। जो बीमारी मुझे तकलीफ़ दे रही है, उसको विश्व की सबसे ताक़तवर दवा भी कम नहीं कर सकती और इसका कोई इलाज नहीं। रोज़ाना, पूरा दिन मेरी हर नस में दर्द अंगड़ाइयाँ लेता रहता है। यह किसी यन्त्रणा से कम नहीं। उन सब दवाओं के बावजूद, जो डॉक्टर ने मुझे देने की कोशिश की है, मेरा मन वीरान हो चुका है और भयानक दहशत के अहसास, बढ़ती बेचैनी और काट खातीं चिन्ताओं से भरा पड़ा है। साधारण चीज़ें, जो बाक़ी सब के लिए बड़ी आसान होती हैं, मेरे लिए लगभग असम्भव हैं। मैं हँस या रो नहीं सकता। मुझे घर से निकलना मुश्किल लगता है। मुझे किसी सक्रियता से कोई ख़ुशी नहीं होती। मेरे दोबारा सोने तक हर चीज़ मेरे लिए सिर्फ़ समय काटने का साधन है। अब, हमेशा के लिए सो जाना ही सबसे ज़्यादा दयालु चीज़ लगती है।"

उपरोक्त पंक्तियाँ 30 वर्षीय अमेरिकी सैनिक डेनियल सॉमर्स की एक चिट्ठी से हैं जिसने ख़ुदकुशी कर ली। 2003 से लेकर उसने कई वर्ष इराक़ में गुज़ारे जिस दौरान वह सैकड़ों सैनिक कार्रवाइयों में शामिल रहा। वह उसी दिन अमेरिका में ख़ुदकुशी करने वाले 22 सैनिकों में से एक था। इराक़ और अफ़ग़ानिस्तान के साथ जुड़े सैनिकों से सम्बन्धित बनी एक संस्था की रिपोर्ट के मुताबिक़ अमेरिका में रोज़ाना 22 सैनिक ख़ुदकुशी कर लेते हैं। 2009 के बाद आत्महत्याओं की संख्या में काफ़ी बढ़ोतरी हुई है। सिर्फ़ 30 साल से कम उम्र के ख़ुदकुशी करने वाले सैनिकों की संख्या इस अरसे में 44 प्रतिशत बढ़ी है। कई मामलों में तो ख़ुदकुशी करने वाले सैनिकों की संख्या युद्ध में मारे जाने वालों से भी अधिक है। मिसाल के तौर पर जनवरी 2012 से सितम्बर 2012 के दौरान 247 सैनिकों ने ख़ुदकुशी की, जबकि इसी दौरान 222 सैनिक सैन्य-कार्रवाइयों के दौरान मारे गये। साल 2014 के पहले के तीन महीनों में ही 1892 सैनिकों ने ख़ुदकुशी की। इन आत्महत्याओं की दर आम नागरिकों से दुगनी से भी ज़्यादा है। इसके अलावा अमेरिकी सेना में ड्यूटी से वापस लौटे बड़ी संख्या में सैनिक मानसिक रोगी हैं और बहुतेरे पी.एस.टी.डी. नाम की बीमारी से पीड़ित हैं। ये आत्महत्याएँ नहीं हैं, बल्कि अमेरिकी सत्ताधारियों, पूँजीपतियों के मुनाफ़े की बलि चढ़ी हत्याएँ हैं।

जब विश्व के बड़े लुटेरों, पूँजीपतियों में मुनाफ़े की छीना-झपटी के लिए दूसरा विश्वयुद्ध हुआ तब तक अमेरिका आर्थिक और राजनीतिक तौर पर इतनी बड़ी ताक़त नहीं था। दूसरे विश्वयुद्ध में अमेरिका ने सोचा कि सोवियत संघ और जर्मनी के आपस में भिड़ने के बाद एक ताक़त हार जायेगी तो दूसरी कमज़ोर हो जायेगी और उसको जीतना आसान रहेगा। इसी योजना के अन्तर्गत अमेरिका ने युद्ध से सुरक्षित दूरी बनाये रखी। दूसरा विश्वयुद्ध 1939 में ही शुरू हो चुका था, लेकिन अमेरिका युद्ध में 1943-44 में शामिल हुआ। जब पूर्व की तरफ़ से स्तालिन के नेतृत्व में सोवियत संघ की लाल सेना जर्मन नाज़ियों को स्तालिनग्राद से खदेड़ते हुए बर्लिन तक जा रही थी तो अमेरिका ने अनुकूल हालत देखकर जर्मनी के ख़िलाफ़ पश्चिम से मोर्चा खोला। उसके बाद अपनी ताक़त के प्रदर्शन के लिए उसने जापान के दो शहरों पर ऐटम बम गिराये। इस युद्ध के दौरान अमेरिका के पूँजीपतियों ने बड़े स्तर पर हथियार, दवाएँ और अन्य सैन्य सामान बनाकर यूरोपीय देशों को बेचे और मोटे मुनाफ़े कमाये। युद्ध के बाद में यूरोप के बहुत से देश कंगाली की हालत तक पहुँच चुके थे और अपनी राजनीतिक ताक़त गँवा चुके थे। अमेरिका ने इन देशों को क़र्ज़ दिये, इन देशों में निर्माण के प्रोजेक्ट अमेरिकी कम्पनियों ने लिये और इस तरह दूसरे विश्वयुद्ध में कूटनीति के दम पर अमेरिका एक बड़ी आर्थिक और राजनीतिक ताक़त बनकर उभरा, जिसमें हथियारों के उद्योग का बहुत बड़ा योगदान था। दूसरे विश्वयुद्ध से लेकर 1960 के दशक तक विश्व अर्थव्यवस्था का 'सुनहरा युग' रहा और उस दौर में अमेरिका भी वृद्धि की हालत में था। 70 के दशक से शुरू हुए आर्थिक संकट से अमेरिका समेत कई देशों की हालत पतली होने लगी, 20वीं सदी के अन्त तक थोड़ी-बहुत राहत मिली, लेकिन फिर हाउसिंग बूम, सब-प्राइम संकट और क़र्ज़ संकट जैसे एक के बाद एक संकटों के कारण अमेरिका की अर्थव्यवस्था और भी लड़खड़ा गयी और पूँजी की ताक़त और मुनाफ़े की हवस ने हथियारों के कारोबार को अमेरिका के गले पड़ा ढोल बना दिया और इसके बजते रहने के लिए युद्ध ज़रूरी हो गये।

वास्तव में होता यह है कि पूँजीपति ढाँचे में समाज की कुल पैदावार बहुत थोड़े हाथों में सीमित होती है और इन थोड़े हाथों के आपसी मुक़ाबले के कारण मण्डी में अराजकता का माहौल बना रहता है जो बार-बार आर्थिक संकट को जन्म देता रहता है। आर्थिक संकट के दौरान उत्पादन ज़रूरत से ज़्यादा हो जाता है और रोज़गार खोने के कारण लोगों में उनको ख़रीदने की क्षमता नहीं होती। ऐसे मौक़े पर पूँजीवादी व्यवस्था के बचे रहने के लिए ज़रूरी हो जाता है कि बड़े स्तर पर तबाही की जाये जिससे पुनर्निर्माण आदि के रूप में नयी मण्डी और नया रोज़गार पैदा किया जा सके। इसीलिए पूँजीवादी ढाँचा बार-बार युद्धों को मानवता पर लादता रहता है, जिससे पूँजीपतियों को पैसा निवेश करने के लिए कोई क्षेत्र मिलता रहे। पहले और दूसरे विश्वयुद्ध और उसके बाद में अनेक छोटी-बड़ी लड़ाइयों का असली कारण यहीं छिपा हुआ है।

अमेरिका की हालत और भी बुरी है, क्योंकि इसने न सिर्फ़ युद्धों के द्वारा तबाही करके अपने पूँजीपतियों के मुनाफ़े के लिए बाज़ार चाहिए, बल्कि अमेरिका का हथियारों का भी बहुत बड़ा कारोबार है। अगर विश्व में अमन का माहौल रहे और देशों में आपसी तनाव का माहौल न रहे तो अमेरिका का हथियारों का उद्योग तबाह हो जायेगा और इसकी अर्थव्यवस्था के पैर उखड़ जायेंगे। अमेरिका के लिए युद्ध लड़ने का तीसरा कारण यह भी है कि उसे वर्षों से चलती आ रही अपनी राजनीतिक नेतागीरी को भी बरकरार रखना है। इसीलिए अमेरिका ने दूसरे विश्वयुद्ध के बाद वियतनाम, इराक़ और अफ़ग़ानिस्तान की तीन बड़ी जंगें मानवता पर थोपीं। इन तीनों युद्धों के अलावा अमेरिका विश्व के 70 से ज़्यादा देशों में किसी न किसी रूप में सैन्य-कार्रवाइयाँ करता रहा है। इन युद्धों में निर्दोष लोगों पर किये गये दिल दहलाने जुल्म किसी को भूले नहीं हैं। इसके अलावा अमेरिका देशों में आपसी तनाव का माहौल बनाये रखने, अन्य देशों में अपने हित के मुताबिक़ सरकार या विद्रोहियों की हिमायत करने और गाज़ा में हत्याकाण्ड करने वाले इज़रायल जैसे देशों की पीठ थपथपाने जैसे काम करता रहता है। इस घृणित और बेरहम काम के लिए अमेरिका के पास विश्व की सबसे बड़ी सैनिक ताक़त है, सबसे आधुनिक हथियार हैं और तरह-तरह की वहशी कार्रवाइयाँ करने के लिए सेना के भीतर कई स्पेशल यूनिट बने हुए हैं। अपनी इसी ताक़त की वजह से अमेरिका की तरफ़ से विश्वभर में निर्दोष लोगों पर किये गये दिल दहलाने वाले जुल्म किसी से छिपे हुए नहीं हैं। हिरोशिमा और नागासाकी के ज़ख़्म आज भी रिस रहे हैं, वियतनाम युद्ध में दूसरे विश्वयुद्ध से भी कई गुणा ज़्यादा बम फेंके गये और वहाँ नापाम बमों का वर्षों तक कहर जिन्होंने देखा है, उनके लिए रात को सोना भी कठिन है, लोगों को क़ैदी बनाकर कष्ट देने, ड्रोन हमलों के द्वारा हत्याकाण्ड भी किसी को नहीं भूले और कहीं भी अमेरिकी युद्धबाज़ों ने बच्चों और औरतों को भी नहीं बख़्शा।

मुनाफ़े की हवस में किये जाते इस बर्बर हत्याकाण्ड के लिए तकनीक और मशीनरी से अहम हथियार हैं मनुष्य जिनको जानवर की तरह वहशी और हुक्म पर चलने वाली क़त्ल की मशीनें बनाने पर पूरा ज़ोर लगाया जाता है। गालियाँ, अपमानजनक शब्दों और सख़्त सज़ाओं की बौछार के नीचे हो रहे सैनिक प्रशिक्षण में उनको क़त्ल करने के लिए तैयार किया जाता है। सेना में यह सिखाया जाता है कि सैनिक का काम सोचना नहीं है, बल्कि हुक्म मानना है। लेकिन जैसा कि जर्मन कवि ब्रेख़्त ने कहा है: मनुष्य सबसे कारगर हथियार है लेकिन उसमें एक नुक्स ये है कि "वह सोच सकता है।" और जब कभी-कभार इन मशीनों के अन्दर का कोई इंसानी दिल धड़क उठता है तो यह क़त्ल करने वाली मशीन बनने से बाग़ी हो जाता है। यही बग़ावत कई रूपों में फूटती है और अमेरिकी सैनिकों की ये आत्महत्याएँ इसी का एक रूप है। अफ़ग़ानिस्तान, इराक़ जैसे इलाक़ों में हत्याकाण्ड में शामिल होने वाले मनुष्य में से जो पूरी तरह पशु नहीं बनते, ख़ून के तालाब, औरतों की चीख़ें, बच्चों का रोना और मासूमों के डरे हुए और दयनीय चेहरे हमेशा उनको घेरे रहते हैं। वे भारी मानसिक तनाव, बेचैनी और उनींदेपन के शिकार हो जाते हैं और यह सब इस हद तक पहुँच जाता है कि उनके सामने पशु बनने या फिर ख़ुदकुशी करने का ही रास्ता बाक़ी बचता है।

यह सब अमेरिका में ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में घट रहा है। युद्ध पूँजीवाद के लिए कितना ज़रूरी हो गया है, इसका अन्दाज़ा इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि साल 2013 में विश्व स्तर पर हथियारों का कारोबार 100 खरब डॉलर के करीब रहा है। पूरे विश्व में मनुष्य को संवेदनहीन, बेरहम बनाने का काम बचपन से ही शुरू हो जाता है। टीवी, मीडिया, किताबें, पत्रिकाओं और फ़िल्मों आदि के द्वारा बेरहम हिंसा की ख़ुराकें देकर शुरू से ही मानव को पशु बनाने की कोशिशें की जाती हैं। फ़िल्में, ख़ासकर हॉलीवुड की फ़िल्मों में हिंसा इतने बड़े स्तर पर और इतने घृणित रूप में पेश की जाती है कि दर्शक धीरे-धीरे उस हिंसा का आदी हो जाता है। अक्सर नायक लोगों को इस तरह मारता है जैसे सलाद काटा जा रहा हो और लोगों को इसमें कुछ भी बुरा नहीं लगता, बल्कि ख़ुशी ही होती है। इस तरह लोगों को यह सिखाने की कोशिश की जाती है कि एक मनुष्य का मारा जाना कोई बहुत बड़ी बात नहीं। फ़िल्में तो सिर्फ़ एक उदाहरण हैं, यह हमला मानवता के दुश्मनों की तरफ़ से अनन्त रूपों में किया जाता है। इससे सम्बन्धित इतिहास की एक घटना याद आती है – साण्डर्स के क़त्ल के बाद में जब बाक़ी साथी राजगुरू के निशाने की तारीफ़ कर रहे थे तो उसका कहना था कि वह भी किसी माँ का पुत्र था। इसी तरह भगतसिंह ने साण्डर्स को मारने के बाद बाँटे गये परचे में कहा कि "हमें एक मनुष्य के मारे जाने का अफ़सोस है।" जबकि आजकल परोसी जाती हिंसा की धुन्ध में लोगों को इस हद तक असंवेदनशील बनाने की कोशिश की जाती है कि उनके लिए इज़रायल की तरफ़ से फ़िलिस्तीन में बच्चों समेत हज़ारों लोगों के किये हत्याकाण्ड की ख़बर अख़बार के बीच की बाक़ी ख़बरों से बहुत अलग नहीं होती, उनको यह बात झँझोड़ती नहीं, कोई नफ़रत नहीं जगाती। हिंसा का यह पाठ सिर्फ़ क़त्ल करने के लिए तैयार किये जा रहे सैनिकों के लिए ही नहीं होता, बल्कि उतना ही आम लोगों के लिए भी होता है। सत्ताधारी लुटेरे ख़ुद की तरफ़ से किये या करवाये जा रहे हत्याकाण्ड को लोगों में स्वीकार करवाने या "छोटी-मोटी" घटना बनाकर पेश करने का काम करते हैं। भारत में सेना और पुलिस भी इसी तर्ज पर ही तैयार होती है, नहीं तो कश्मीर, पूर्वोत्तर भारत समेत देश के अलग-अलग हिस्सों में किये जा रहे सरकारी दमन भारतीय सत्ता के लिए सम्भव ही नहीं होंगे। भारत में भी सेना और अर्द्धसैनिक बलों के जवानों द्वारा आत्महत्या करने या फिर अपने अफसरों को निशाना बनाने की बढ़ती घटनाएँ सैनिकों के बीच बढ़ती घुटन को ही बताती हैं।

इस तरह जब तक पूँजीवादी ढाँचा रहेगा तब तक यह मानवता पर युद्धों को थोपता रहेगा, मुनाफ़े के लिए मासूम लोगों का क़त्लेआम करता रहेगा, सैनिकों को क़त्ल करने वाली मशीनें बनने या ख़ुदकुशी करने के लिए मजबूर करता रहेगा और मनुष्यों को पशुओं के स्तर तक गिराने की कोशिश करता रहेगा। लेकिन इतिहास का सबक है कि अपने तमाम भद्दे प्रयासों के बावजूद लुटेरे सत्ताधारी कभी भी पूरी मानवता को पशु नहीं बना सकते। रूसी कहानीकार चेख़व के अनुसार – "ज़िन्दा मनुष्य बेइन्साफ़ी के विरुद्ध जवाबी कार्रवाई करते हैं।" इतिहास के हर दौर में स्पार्टकस, और भगतसिंह आदि पैदा होते रहे हैं और क्रान्तियों के द्वारा लुटेरों को मिट्टी में रौंदते रहे हैं। आज अमेरिकी सैनिकों का गुस्सा व्यक्तिगत विद्रोह के तौर पर आत्महत्याओं के रूप में सामने आ रहा है, कल को जनउभारों की हिमायत के रूप में भी सामने आयेगा और वह मानवता को पशु बनाने वाले इस लुटेरे ढाँचे का अन्त करने की लड़ाई में भागीदार होंगे।

– रौशन

स्तालिन कालीन सोवियत संघ के इतिहास के कुछ तथ्य और नये खुलासों पर एक नज़र

दुनियाभर के साम्राज्यवादी देशों के आका आधे-अधूरे या बिल्कुल झूठे तथ्यों के माध्यम से स्तालिन-काल में मेहनतकश जनता की संगठित ताक़त द्वारा हासिल सफलताओं को बदनाम करने और विभ्रम की स्थिति पैदा करने के हरसम्भव प्रयास करते रहे हैं। लेकिन इस सारे प्रोपेगेण्डा के बावजूद 8 मई 2014 को डिफ़ेंस-वन (http://www.defenseone.com) के एक सर्वे में रूस के 55 फ़ीसदी नौजवानों का मानना था कि सोवियत संघ का न होना उनके लिए दुर्भाग्य है (देखें – Poll: More Than Half of Russians Want the Soviet Union Back)। समाजवादी निर्माण के उस दौर और उसका नेतृत्व करने वाले सर्वहारा के नेता स्तालिन को समझने के लिए सभी पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर इतिहास के इस काल के अब तक ज्ञात सभी तथ्यों को एक साथ रखकर संजीदगी से नज़र डालने की ज़रूरत है। (सभी स्रोतों की सूची अन्त में देखें)

1. स्तालिन काल की घटनाओं पर एक नज़र

1917 में अक्टूबर क्रान्ति के बाद सोवियत संघ में समाजवादी निर्माण के पहले ऐतिहासिक प्रयोग के दौरान लेनिन और फिर स्तालिन के नेतृत्व में सर्वहारा की संगठित शक्ति ने प्रतिक्रान्तिकारियों द्वारा क्रान्ति का तख्तापलट करने के मंसूबों पर पानी फेरने से लेकर द्वितीय-विश्व युद्ध तक पूरी दुनिया को हिटलर और फासीवाद से मुक्ति दिलाने में अभूतपूर्व सफलता के साथ नेतृत्व किया था। स्तालिन काल में समाजवादी सोवियत संघ में जनता के जीवन स्तर में गुणात्मक वृद्धि हुई, बेरोज़गारी और ग़रीबी जैसी पूँजीवादी बीमारियों को जड़ से समाप्त कर दिया गया था, महिलाओं को समाज में बराबरी का दर्जा किसी भी अन्य पूँजीवादी देश से बेहतर रूप में मिला हुआ था, शिक्षा का समान अधिकार हर व्यक्ति को मिल चुका था और नाममात्र की जनसंख्या अशिक्षित बची थी, औद्योगिक- तकनीकी तथा वैज्ञानिक विकास के क्षेत्र में सोवियत संघ अनेक सफलताएँ हासिल कर रहा था। सोवियत संघ के समाजवादी प्रयोगों ने पूरी दुनिया की मेहनतकश जनता के सामने यह सिद्ध कर दिया था कि सर्वहारा वर्ग की समाजवादी सत्ता, जो एक वर्गहीन समाज के निर्माण के लिए संघर्षरत है, मानव समाज के विकास में सभी पुराने वर्ग समाजों की तुलना में आगे की ओर एक लम्बी छलाँग है।

सोवियत संघ के बारे में आज कई नये तथ्य सामने आ चुके हैं। अमेरिकी शोधकर्ता प्रो. ग्रोवर फ़र और रूसी अनुसन्धानकर्ता यूरी जोखोव जैसे कई इतिहासकारों ने स्तालिन कालीन सोवियत संघ के अभिलेखों के अध्ययन के आधार पर अनेक सबूतों के साथ खुलासे किये हैं। इन दस्तावेज़ों के आधार पर उस दौर में हुई व्यावहारिक ग़लतियों की पृष्ठभूमि समझने में मदद मिलती है कि किन परिस्थितियों में पार्टी में मौजूद पूँजीवादी तत्वों के विरुद्ध स्तालिन के नेतृत्व में संघर्ष किया जा रहा था। चूँकि सोवियत संघ में पहली बार समाजवादी निर्माण का प्रयोग किया जा रहा था जिसका कोई अनुभव मौजूद नहीं था, ऐसे में उस समय स्तालिन पार्टी में पैदा हो रहे षड्यन्त्रकारियों और पूँजीवादी पथगामियों के पैदा होने की विचारधारात्मक ज़मीन नहीं तलाश सके। स्तालिन ने कुछ उसूली भूलें कीं और कुछ व्यावहारिक कार्यो के दौरान ग़लतियाँ हुईं, और कुछ ग़लतियों से बचा जा सकता था। ग्रोवर फ़र ने अपनी पुस्तक "जनवाद के लिए स्तालिन का संघर्ष" के दो खण्डों में स्तालिन के दौर में पार्टी के भीतर जो संघर्ष चल रहे थे, उनका सन्दर्भ सहित विवरणों का खुलासा किया है।

1. 1920 में सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 9वीं कांग्रेस में हारने के बाद कई विरोधी तत्व उस समय नेतृत्व में मौजूद नेताओं की हत्या करने और तख़्तापलट की षड्यन्त्रकारी कोशिशें कर रहे थे। ख्रुश्चेव ने 20वीं कांग्रेस में अपने गुप्त भाषण में सारी ग़लतियों का दोष स्तालिन पर लगाया, लेकिन 1930 से 1938 के बीच सोवियत संघ में नेतृत्व को बदनाम करने के लिए जनता के दमन की षड्यन्त्रकारियों की गतिविधियाँ चल रही थीं उनका कहीं ज़िक्र नहीं किया गया। (बिन्दु 47, 57, "जनवाद के लिए स्तालिन का संघर्ष खण्ड-2", ग्रोवर फ़र)

2. दस्तावेज़ों में मिले सबूतों के आधार पर ग्रोवर फ़र ने खुलासा किया है कि द्वितीय विश्व-युद्ध से पहले 1930 से 1938 के बीच और विश्व युद्ध के बाद अपनी मृत्यु से पहले तक स्तालिन राज्य पर से पार्टी के प्रत्यक्ष नियन्त्रण को समाप्त करने के लिए संघर्ष कर रहे थे। उनका प्रस्ताव था कि नेतृत्व के चुनाव के लिए गुप्त मतदान होना चाहिए, जिससे व्यापक जन-समर्थन वाले नेताओं को नेतृत्व में लाया जा सके। पार्टी में पहले से मौजूद नेतृत्व के उन लोगों के लिए, जो अपने व्यक्तिगत हितों के चलते विशेषाधिकारों का एक घेरा तैयार कर चुके थे, स्तालिन का यह क़दम ख़तरनाक होता, यही कारण था कि यह प्रस्ताव पारित नहीं हो सका। (बिन्दु 113-119, "जनवाद के लिए स्तालिन का संघर्ष, खण्ड-1", ग्रोवर फ़र)

3. विश्व युद्ध की समाप्ति के दौर में 1947 में स्तालिन और पोलित-ब्यूरो में उनका समर्थन करने वाले सदस्यों ने पार्टी नेतृत्व में मौजूद विशेषाधिकार प्राप्त लोगों के विरुद्ध संघर्ष करते हुए पार्टी को राज्य के प्रत्यक्ष नियन्त्रण से हटाने और जनवादी चुनावी प्रणाली लागू करने का प्रस्ताव पुनः रखा था जो लागू नहीं हो सका। 1952 में सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 19वीं कांग्रेस में अन्तिम बार स्तालिन ने इसका प्रयास किया, लेकिन इस कांग्रेस की रिपोर्ट का कोई ज़िक्र ख्रुश्चेव ने अपने गुप्त भाषण में नहीं किया और आज तक यह रिपोर्ट प्रकाशित नहीं की गयी है। इस कांग्रेस में स्तालिन के भाषण का एक छोटा हिस्सा ही आज तक प्रकाशित किया गया है, जिसके अनुसार स्तालिन पार्टी के पद और संगठनात्मक ढाँचे में बदलाव करना चाहते थे। इन्हीं बदलावों के तहत स्तालिन ने पार्टी के महासचिव का पद समाप्त करने और ख़ुद महासचिव के पद से इस्तीफ़ा देकर 10 पार्टी सचिवों में से एक का हिस्सा बनने का प्रस्ताव रखा था। यदि स्तालिन के प्रस्ताव लागू कर दिये जाते तो उस समय राज्य के नियन्त्रण में मौजूद विशेषाधिकार प्राप्त पूँजीवादी पथगामियों और षड्यन्त्रकारियों का सत्ता में रहना मुश्किल हो जाता। (बिन्दु 2, 16, 17, 19, 21, "जनवाद के लिए स्तालिन का संघर्ष, खण्ड 2", ग्रोवर फ़र)

4. सोवियत संघ के उस पूरे ऐतिहासिक दौर में स्तालिन द्वारा चलाये जा रहे संघर्षों की रोशनी में इन घटनाओं का विश्लेषण तथा सबूतों के आधार पर ग्रोवर फ़र ने मार्च 1953 में हुई स्तालिन की मृत्यु के बारे में लिखा है, "दौरा पड़ने के बाद या तो स्तालिन को उनके दफ़्तर में मरने के लिए छोड़ दिया गया था या ज़हर देकर उनकी हत्या की गयी थी।" (बिन्दु 43, "जनवाद के लिए स्तालिन का संघर्ष खण्ड 2", ग्रोवर फ़र)।

5. स्तालिन की मृत्यु के बाद सोवियत संघ का भविष्य पूरी तरह से पार्टी नेतृत्व में बैठे संशोधनवादियों के हाथों में आ गया। इस गुट ने राज्य और आर्थिक क्षेत्र के सभी पदों पर अपनी इज़ारेदारी सुनिश्चित कर ली और किसी भी पूँजीवादी राज्य की तरह परजीवी के रूप में ख़ुद को सत्ता में स्थापित कर लिया। ख्रुश्चेव, गोर्बाचेव, येल्तसिन से लेकर पुतिन तक यही इज़ारेदार नेतृत्व आज तक रूस की सत्ता में मौजूद है। (बिन्दु 45, 46, वही)

इस पूरे दौर का घटनाक्रम दर्शाता है कि अक्टूबर 1917 में क्रान्ति के बाद सोवियत संघ में पार्टी के अन्दर विशेषाधिकार प्राप्त पूँजीवादी पथगामी लगातार पैदा हो रहे थे और पहले समाजवादी राज्य की रक्षा में इन भ्रष्ट तत्वों के विरुद्ध स्तालिन के दौर में लगातार संघर्ष चलाया गया। लेकिन संघर्ष के सही विचारधारात्मक स्वरूप का विस्तार न कर पाने के कारण पूरा भरोसा राज्य के पदाधिकारियों पर किया गया और उनकी मदद से सज़ा देने का काम किया गया, जिससे पार्टी में मौजूद षड्यन्त्रकारियों को अतिशय रूप से सज़ा देकर स्तालिन तथा राज्य को बदनाम करने का मौक़ा मिल गया। इन सभी ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर देखें तो पार्टी और दुश्मन तथा जनता के बीच अन्तरविरोधों को हल करने की जो विचारधारात्मक समझ चीनी पार्टी ने महान बहस में प्रस्तुत की, वह सही है कि स्तालिन उस दौर में इन अन्तरविरोधों को हल करने की सही लाइन विकसित नहीं कर सके, यह स्तालिन की ग़लती नहीं बल्कि उस दौर की एक व्यावहारिक सीमा थी।

2. सोवियत संघ की 20वीं पार्टी कांग्रेस (1956) में ख्रुश्चेव के गुप्त भाषण से शुरू हुआ स्तालिन काल के दौरान हासिल सफलताओं को झूठे तथ्यों के आधार पर बदनाम करने का सिलसिला, जो आज भी जारी है

स्तालिन काल का मूल्यांकन और उस दौर के बारे में अब जितने खुलासे हुए हैं, उनके आधार पर हम ख्रुश्चेव के गुप्त भाषण के पीछे छिपे मूल मकसद को समझ सकते हैं। स्तालिन काल की महान सफलताओं में स्तालिन के नेतृत्व की मान्यता के रहते ख्रुश्चेव के चारों ओर संगठित हुए विशेषाधिकार प्राप्त भ्रष्ट गुटों और पूँजीवादी पथगामियों के लिए अपनी संशोधनवादी मार्क्सवाद-लेनिनवाद विरोधी नीतियाँ लागू करना सम्भव नहीं होता। ऐसी स्थिति में पार्टी के नेतृत्व पर काबिज इस संशोधनवादी गुट के लिए अपनी सर्वहारा विरोधी सुधारवादी नीतियों पर पर्दा डालने के लिए पहले स्तालिन और स्तालिन के पूरे दौर को बदनाम करना ज़रूरी था। 1953 में स्तालिन की मृत्यु के बाद ख्रुश्चेव ने 1956 तक सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के अन्दर इस संशोधनवादी खेमे के समर्थन के आधार का विस्तार किया और 1956 की 20वीं पार्टी कांग्रेस में अपना गुप्त भाषण पढ़ा जिसमें व्यक्ति पूजा समाप्त करने के नाम पर स्तालिन पर अनेक झूठे आरोप लगाये और सोवियत संघ के समाजवादी संक्रमण के दौरान हुई सभी ग़लतियों के लिए स्तालिन को दोषी ठहराकर उनका पूर्ण निषेध कर दिया।

अपने भाषण में स्तालिन पर कीचड़ उछालकर ख्रुश्चेव ने सर्वहारा वर्ग के नेता के रूप में स्तालिन को ही नहीं बल्कि उस पूरे दौर में लागू की गयी नीतियों, सर्वहारा अधिनायकत्व और समाजवादी संक्रमण के मूल मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त को पूरी दुनिया में बदनाम करने की कोशिश की, जिसने पूरे विश्व के कम्युनिस्ट आन्दोलनों में सैद्धान्तिक स्तर पर एक विभ्रम की स्थिति पैदा कर दी थी। इस वक्तव्य के माध्यम से ख्रुश्चेव ने समाजवाद को बदनाम करने का एक और मौक़ा साम्राज्यवादियों की झोली में डाल दिया।

लेनिन ने अपने दौर में आन्दोलन में मौजूद ग़लत प्रवृत्तियों के प्रति बहसों का हवाला देते हुए कहा था कि "कभी-कभी गरुड़ मुर्गियों से नीचे उड़ सकते हैं, लेकिन मुर्गियाँ कभी भी गरुड़ की ऊँचाई तक नहीं उठ सकतीं।" (महान बहस, पृष्ठ 93) इस उद्धरण को स्तालिन और ख्रुश्चेव के सन्दर्भ में आसानी से समझा जा सकता है। चीनी पार्टी ने ख्रुश्चेव द्वारा स्तालिन के पूर्ण निषेध के पीछे मूल कारण के बारे में कहा था, "स्तालिन के प्रति इस गाली-गलौज में, ख्रुश्चेव, दरअसल, सोवियत व्यवस्था और राज्य की अन्धाधुन्ध भर्त्सना कर रहे हैं। इस सन्दर्भ में उनका भाषण काउत्सी, त्रात्स्की, टीटो और जिलास जैसे भगौड़ों की भाषा से किसी भी तरह कमज़ोर नहीं, बल्कि वास्तव में, उनसे भी तीक्ष्ण है।" (महान बहस, पृष्ठ 97)

ख्रुश्चेव ने अपने गुप्त वक्तव्य में स्तालिन को "हत्यारा", "निरंकुश शासक", "इतिहास का सबसे बड़ा तानाशाह" जैसे सम्बोधनों से नवाज़ा था और व्यक्ति-पूजा के अनेक आरोप लगाये थे। आज यह पर्दा हट चुका है कि स्तालिन पर ख्रुश्चेव ने अपने गुप्त भाषण में जो भी आरोप लगाये थे, सारे झूठ थे। इसका विस्तृत विवरण तथ्यों के साथ ग्रोवर फ़र की पुस्तक "ख्रुश्चेव के 61 झूठ" में देखा जा सकता है, जो पूरी सोवियत संघ के अभिलेखागार के दस्तावेज़ों में मिले तथ्यों के अध्ययन पर आधारित है।

पूरी दुनिया में आज तक आधुनिक संशोधनवादी, त्रात्स्की-पन्थी व अराजकतावादी ख्रुश्चेव द्वारा तैयार किये गये "स्तालिन की ग़लतियों" के पर्दे की आड़ लेकर सर्वहारा वर्ग के साथ अपनी ग़द्दारी को छुपाने का काम कर रहे हैं। सर्वहारा वर्ग के प्रति ख्रुश्चेव की इस ग़द्दारी के झण्डे को उठाकर पूरी दुनिया के साम्राज्यवादी-पूँजीवादी आज तक कम्युनिस्ट आन्दोलनों को बदनाम करने और पूँजीवादी समाज में दमन-उत्पीड़न से जूझ रही मेहनतकश जनता के बीच समाजवाद के प्रति सन्देह पैदा करने के लिए हरसम्भव कोशिश में लगे हैं, ताकि आने वाले समय में कम्युनिस्ट आन्दोलनों को दिग्भ्रमित किया जा सके और व्यापक मेहनतकश जनता की लूटमार और शोषण पर खड़े अपने स्वर्ग के टापू को उजड़ने से बचाया जा सके। लेकिन यह झण्डा इतिहास के तथ्यों की मार से लगातार चिथड़ा होता जा रहा है और दुनिया की जनता के दिलों से स्तालिन को मिटाने की उनकी हर कोशिश नाकाम रही है।

स्रोत सूची :

1) महान बहस, अन्तरराष्ट्रीय प्रकाशन
2) Documents of Great Debate (3 Volumes), International Publication
3) Political Economy (Sangai Political Text Book)
4) Khrushchev Lied by Grover Furr
5) "Stalin and the Struggle for Democratic Reform, Part 1 and 2" by Grover Furr
6) Documents of Great Proletarian Cultural Revolutions and Great Leap Forward on http:èkèkwww.revcom.us
7) http://www.thisiscommunism.org
8) Documents of marxist.org
9) Reject the Revisionist Theses of the XX Congress of the Communist Party of the Soviet Union and the Anti-Marxist Stand of Krushchev's Group! Uphold Marxism-Leninism!" by Enver Hoxha, Moscow, 16 November, 1960

– राजकुमार

तमाम छात्रों और मज़दूरों को ग़ैर-राजनीतिक बनाकर मुनाफ़े के लिए खटने वाला गुलाम नहीं बनाया जा सकता

अगले महीने दिल्ली में चुनाव होने वाले हैं और चुनावी राजनीति के इस मौसम में एक बार फिर जनता के नये-नये "मसीहा" उभरने लगे हैं। इससे पहले देश के कई अन्य राज्यों में राजनीतिक उठा-पटक का दौर जारी था और लोकसभा चुनाव से लेकर कभी एक तो कभी दूसरी पार्टी के नेता ख़ुद को जनता की सभी समस्याओं का "समाधान" करने वाले मसीहा के रूप में प्रस्तुत करके सत्ता हथिया चुके हैं।

इन चुनावी सरगर्मियों के बीच देश की आम जनता की स्थिति को दर्शाते कुछ आँकड़ों की तरफ़ ध्यान दें तो हालत यह है कि देश में हर साल एक करोड़ नये काम करने वाले नौजवान श्रम के बाज़ार में आ रहे हैं, जिनमें से सिर्फ़ 5 लाख को ही स्थाई काम मिलता है, जबकि बाक़ी 95 लाख बेरोज़गारी में या कहीं सब्ज़ी-भाजी बेचकर या दिहाड़ी करके किसी तरह जीते हुए काम की तलाश में भटकते रहते हैं (Report on Third Annual Employment and Unemployment Survey 2012-13)। इन्हीं बेरोज़गार नोजवानों के सहारे 'मेक इन इंडिया' के नाम पर सरकार की तरफ़ से पूरी दुनिया के पूँजीपतियों को भारत में अपने उद्योग लगाने का न्यौता दिया जा रहा है। इन पूँजीपतियों को मुनाफ़ा कमाने में कोई परेशानी न हो इसके लिए सरकार उन्हें पूरी तरह से "सन्तुष्ट" करने के लिए तत्पर है। इसी के साथ निवेश के लिए "अच्छा-माहौल" बनाने के नाम पर कई सरकारी उपक्रमों, जैसे ओएनजीसी और रेलवे को भी निजी लूट के लिए खोल दिया गया है। और मज़दूरों के बचे-खुचे क़ानूनों को लागू करना तो दूर बल्कि इन क़ानूनों को बदलकर निष्प्रभावी बनाने की कोशिशें तेज़ हो चुकी हैं जिससे पूँजी का निवेश करने वाले देशी-विदेशी पूँजीपतियों को किसी "समस्या" का सामना न करना पड़े।

इन सभी सरगर्मियों के बीच अक्सर छात्रों और मज़दूरों के बीच एनजीओ, धार्मिक संगठनों, बाबाओं, धर्मगुरुओं जैसे अनेक माध्यमों से यह प्रचार किया जाता है कि उन्हें राजनीति के चक्कर में पड़कर अपना समय बर्बाद नहीं करना चाहिए और अपने काम पर ध्यान देना चाहिए। साथ ही सभी धर्मों के कोई न कई राजनीतिक या ग़ैर-राजनीतिक संगठन भी पूरे देश में मौजूद हैं जो अपने-अपने धर्म के नाम पर देश के बेरोज़गार नौजवानों और मज़दूरों के बीच फूट डालकर मूल मुद्दों से उनका ध्यान भटकाने का काम करते हैं। आज छात्रों-युवाओं को "ग़ैर-राजनीतिक" बने रहने का प्रचार करने वाले सभी "शुभचिन्तकों" के बारे में गहराई से पड़ताल करने की ज़रूरत है।

सबसे पहले मज़दूरों के ग़ैर-राजनीतिक बने रहने की बात करें तो फ़ैक्टरियों, दफ़्तरों और कम्पनियों में मज़दूरी के रूप में जो वेतन उन्हें दिया जाता है और काम की परिस्थितियाँ निर्धारित करने के लिए जो क़ानून बने हैं उनको लागू करवाने का काम प्रशासन द्वारा किया जाता है। और इन क़ानूनों को बनाने और उन्हें लागू करने में आने वाली "समस्याओं" का समाधान करने का काम सत्ता में मौजूद राजनीतिक पार्टियों के निर्देश पर होता है। वर्तमान पूँजीवादी जनतन्त्र में काम करने वाले हर इंसान के जीवन में हर पल मौजूद इस राजनीतिक दख़ल के बावजूद उन्हें यह विश्वास दिलाने की कोशिश की जाती है कि राजनीति उनके जीवन से अलग कोई परायी वस्तु है, और राजनीति करना कुछ विशेष लोगों का काम है। हमारे देश के संसदीय जनतन्त्र के परिप्रेक्ष्य में यह एक सीमा तक सच भी है, क्योंकि वोट बैंक की राजनीति में ज़्यादातर पैसे के दम पर चुनाव लड़ा जाता है जिसमें ठेकेदारों, दलालों और बड़े-बड़े पूँजीपतियों के पैसों पर खड़ी की गयीं राजनीतिक पार्टियों के सिवाय आम लोगों के लिए कोई स्थान नहीं होता। लेकिन ध्यान देने वाली बात यह है कि क्या राजनीति का अर्थ सिर्फ़ वोट डालकर सरकार चुनना ही है। इतिहास की थोड़ी भी जानकारी रखने वाले व्यक्ति को इतना पता होगा कि राजनीति से सिर छुपाकर गुलामों की तरह काम करके आज तक जनता ने कुछ भी हासिल नहीं किया है। गुलामी और साम्राज्यवाद-सामन्तवाद से लेकर वर्तमान पूँजीवादी समाज में आने तक जो भी अधिकार आज आम जनता को मिले हैं वे सभी समय-समय पर पूरी दुनिया की मेहनतकश जनता के किसी न किसी संगठित राजनीतिक संघर्ष और आन्दोलनों के दम पर हासिल किये गये हैं। हर देश में मेहनतकश जनता का जीवन-स्तर उस देश के मज़दूरों के संघर्षों के इतिहास की ही देन है, चाहे प्रत्यक्ष रूप में या अप्रत्यक्ष रूप में।

लेकिन पूँजी के दम पर खड़ी की गयी अनेक राजनीतिक पार्टियाँ लोगों के सामने उनके मसीहा खड़े कर, अपने भाड़े के कार्यकर्ताओं के सहारे समाज के कोने-कोने में मज़दूरों-नौजवानों को गुमराह करने के लिए उन्हें यह विश्वास दिलाने की कोशिश करते हैं कि "राजनीति में समय लगाना समय की बर्बादी है", "सिर झुकाकर कारख़ानों और फ़ैक्टरियों में अपना समय बेचते रहो" और अगर "काम नहीं करोगे तो खाओगे क्या", "बाक़ी सारी ज़िम्मेदारी नेताओं पर छोड़ दो"। बचपन से इस तरह के भ्रामक प्रचार के साये में पले-बढ़े लोगों पर इसका असर ज़रूर पड़ता है जो मज़दूरों-नौजवानों को राजनीतिक रूप से उदासीन एक वेतनभोगी गुलाम में तब्दील करने में कोई कसर नहीं छोड़ता।

इसी तरह छात्रों से भी कहा जाता है कि कॉलेज सिर्फ़ पढ़ाई करने के लिए होते हैं जहाँ राजनीति में समय बर्बाद नहीं करना चाहिए। लेकिन साथ ही यह भी कहा जाता है कि छात्र-नौजवान देश का भविष्य होते हैं। लेकिन क्या छात्र-नौजवान देश का भविष्य सिर्फ़ इसलिए होते हैं कि चुपचाप स्कूल-कॉलेज में पढ़ाई करके किसी एक क्षेत्र में विशेषज्ञता हासिल करके कारख़ानों या ऑफ़िसों में सिर झुकाकर मशीनों की तरह काम करने में लग जायें? बिना यह जाने कि वे पढ़कर जिस काम में विशेषज्ञता हासिल कर रहे हैं, उसका क्या सामाजिक महत्व है, क्या उससे जनता का कुछ भला हो रहा है या सिर्फ़ पूँजी की जुगाली करने वाले कुछ मुट्ठीभर लोगों की जेबें गरम हो रही हैं, जो जनता की मेहनत और प्राकृतिक संसाधनों को निचोड़ने के नये-नये तरीक़े ईजाद करने में लगे हैं, और जो काम करने वाली व्यापक आबादी को उदासीन बनाकर और उन्हें आपस में बाँटकर ख़ुद बिना किसी मेहनत के अय्याशी भरी ज़िन्दगी जी रहे हैं। जबकि दूसरी ओर देश-समाज की बड़ी आबादी बेरोज़गारी, कुपोषण और शोषण की शिकार है। क्या छात्रों को ऐसे ही भविष्य के निर्माण के लिए प्रेरणा और शिक्षा दी जाती है जिससे कि आज का छात्र कल किसी कारख़ाने या ऑफ़िस में अराजनीतिक रूप से "शिक्षित" होकर समाज की वर्तमान परिस्थितियों पर कोई सवाल उठाये बिना, कुछ लोगों के मुनाफ़े के लिए उत्पादन के काम में या सेवा करने में लग जाये? ऐसे में हर एक छात्र को सवाल उठाना चाहिए कि क्या राजनीतिक रूप से अशिक्षित करके उन्हें अर्द्ध-शिक्षित उत्पादन मशीन नहीं बनाया जा रहा है।

छात्र और नौजवान देश का भविष्य होते हैं, लेकिन उस तरह नहीं जैसाकि आजकल की शिक्षा-व्यवस्था और पूरा प्रचार तन्त्र में हमें बताया जाता है। छात्र और नौजवान भविष्य में खटने वाले मज़दूर ही नहीं होते हैं, बल्कि इतिहास बनाने वाले राजनीतिक रूप से सचेत मेहनतकश होते हैं, जो विज्ञान और तकनीकी विशेषज्ञता के साथ ही देश की राजनीति और संस्कृति को अपने काम से संगठित एकता बनाकर बदलते आये हैं और नये मूल्यों तथा नये विचारों का सूत्रपात करते हैं। आज छात्रों और मेहनतकश नौजवानों को यह नहीं बताया जाता कि उनकी सारी सृजनशीलता को पुरानी घिसी-पिटी राजनीति, सामाजिक मूल्यों और संस्कृति के पाटों के बीच कुचला जा रहा है और एक उत्पादन मशीन तथा सिर झुकाकर आज्ञा पालन करने वाले रोबोट में बदलने का काम किया जा रहा है।

राजनीति पर अपनी इज़ारेदारी बनाये बैठे लोगों को लगता है कि यदि देश की युवा आबादी को राजनीतिक रूप से उदासीन और अशिक्षित कर दिया जायेगा तो वे बेरोज़गार होकर काम की तलाश में भटकते रहेंगे, या किसी कारख़ाने में या किसी ऑफ़िस में किसी भी शर्त पर काम करने लगेंगे और कुछ मुट्ठीभर देशी-विदेशी पूँजीवादी-साम्राज्यवादी मुनाफ़ाख़ोरों को देश की प्राकृतिक तथा मानव सम्पदा को खुले आम लूटते हुए देखते रहेंगे। एक सीमा तक वर्तमान प्रचार तन्त्र मज़दूरों और नौजवानों के बीच लम्पट और कूपमण्डूक संस्कृति के माध्यम से ऐसा करने में सफल भी हो रहा है। राजनीति में हिस्सा लेने के नाम पर कुछ राजनीतिक पार्टियाँ "मिस-कॉल" करके सदस्यता दे रही हैं, लेकिन मिस-कॉल करके समाज के भविष्य का ठेका किसी और को दे देना राजनीति नहीं है, बल्कि देश की मेहनतकश जनता के साथ एक मज़ाक़ है। इन सच्चाइयों के बीच भी यह सम्भव नहीं है कि देश की व्यापक आबादी को उसकी अपनी बदहाली के वास्तविक कारण के बारे में हमेशा के लिए अँधेरे में धकेले रखा जाये। पूँजीवाद के रहते जहाँ श्रम शक्ति एक माल हो, और जहाँ इंसान को बाज़ार में बिकने वाले माल में तब्दील कर दिया गया हो, वहाँ छात्रों और मज़दूरों को राजनीतिक रूप से अशिक्षित बनाकर सिर झुकाकर काम करने वाली भेड़ों में तब्दील करके नहीं रखा जा सकता। आने वाले समय में शोषक सम्बन्धों के कारण पैदा हुई जीवन की बदतर परिस्थितियाँ बार-बार मज़दूरों, किसानों और नौजवानों को अपने अधिकारों के बारे में जानकारी हासिल करने के साथ संघर्षों के इतिहास को समझते हुए मुनाफ़ा-केन्द्रित पूँजीवादी व्यवस्था और समाज में व्याप्त दकियानूसी मान्यताओं और प्रचलनों को बदलने के लिए ख़ुद आगे आने और व्यापक स्तर पर हर प्रकार के शोषण के विरुद्ध संगठित होने का आह्वान करती रहेंगी। और जैसाकि भगतसिंह ने कहा था, कि यह संघर्ष तब तक जारी रहेगा जब तक आदमी द्वारा आदमी के शोषण का पूरी तरह ख़ात्मा नहीं हो जाता।

– राजकुमार

'अच्छे दिनों' के भरम से बाहर निकलो – आने वाले कठिन दिनों के संघर्षों के लिए ख़ुद को तैयार करो!

(पेज 1 से आगे)

दूसरी तरफ़, अम्बानी, अदानी, बिड़ला, टाटा जैसे अपने आकाओं को मोदी सरकार एक के बाद एक तोहफ़े दे रही है! तमाम करों से छूट, लगभग मुफ़्त बिजली, पानी, ज़मीन, ब्याजरहित कर्ज़ और मज़दूरों को मनमाफ़िक ढंग से लूटने की छूट दी जा रही है। देश की प्राकृतिक सम्पदा और जनता के पैसे से खड़े किये सार्वजनिक उद्योगों को औने-पौने दामों पर उन्हें सौंपा जा रहा है। 'स्वदेशी', 'देशभक्ति', 'राष्ट्रवाद' का ढोल बजाते हुए सत्ता में आये मोदी ने अपनी सरकार बनने के साथ ही बीमा, रक्षा जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों समेत तमाम क्षेत्रों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को इजाज़त दे दी है। 'मेक इन इण्डिया' के सारे शोर-शराबे का अर्थ यही है कि "आओ दुनिया भर के मालिको, पूँजीपतियो और व्यापारियो! हमारे देश के सस्ते श्रम और प्राकृतिक संसाधनों को बेरोक-टोक जमकर लूटो!"

मगर मोदी की तमाम धावा-धूपी और देशी-विदेशी लुटेरों के आगे पलक-पाँवड़े बिछाने की कोशिशों के बावजूद असलियत यह है कि निवेशक पूँजी लेकर आ ही नहीं रहे हैं। जैसा कि हमने 'मज़दूर बिगुल' के पिछले अंक में कहा था, लगातार गहराती मन्दी के कारण विश्व पूँजीवादी व्यवस्था के सारे सरगना ख़ुद ही परेशान हैं। अति-उत्पादन के संकट के कारण दुनियाभर में उत्पादक गतिविधियाँ पहले ही धीमी पड़ रही हैं और तमाम उपायों के बावजूद बाज़ार में माँग उठ ही नहीं रही है, तो 'मेक इन इंडिया' करने के लिए पूँजी निवेशकों की लाइन कहाँ से लगने लगेगी? जो आयेगा भी, वह चाहेगा कि कम से कम लगाकर ज़्यादा से ज़्यादा निचोड़ ले जाये। मोदी आजकल यही लुकमा फेंकने की कोशिश कर रहे हैं कि किसी भी तरह आप पूँजी लगाओ तो सही, हम आपको यहाँ लूटमार मचाने की हर सुविधा की गारंटी करेंगे। हाल में भारतीय पूँजीपतियों के संगठन एसोचैम ने कहा कि निजी क्षेत्र में निवेश बढ़ने की सम्भावना ही कहाँ है जबकि बहुत से उद्योगों में पहले ही सिर्फ़ 30-40 प्रतिशत उत्पादन हो रहा है। अब तमाम पूँजीपति सरकार से ख़र्च बढ़ाने की गुहार लगा रहे हैं।

ज़ाहिर है कि अमीरों के "अच्छे दिनों" का ख़र्चा आम जनता की जेब से ही वसूला जायेगा। लेकिन आम लोग "अच्छे दिनों" की असलियत को समझ रहे हैं और उनके भीतर नाराज़गी और गुस्सा बढ़ रहा है। यही कारण है कि मोदी सरकार लुटेरों की सेवा करने के अपने जनविरोधी कदमों के साथ ही देश भर में साम्प्रदायिक तनाव भड़काया जा रहा है। पहले 'लव जिहाद' का शोर मचाया गया था, जो कि फ़र्ज़ी निकला; उसके बाद, 'घर वापसी' के नाम पर तनाव पैदा किया जा रहा है 'रामज़ादे-हरामज़ादे' जैसी बयानबाज़ियाँ की जा रही हैं मोदी सरकार को भगवा ब्रिगेड 800 वर्षों बाद 'हिन्दू राज' की वापसी क़रार दे रही है कुछ वर्षों में सारे भारत को हिन्दू बनाने का एलान किया जा रहा है हिन्दू औरतों से चार बच्चे पैदा करने के लिए कहा जा रहा है! भगवा ब्रिगेड की हिन्दुत्ववादी साम्प्रदायिकता के साथ ओवैसी जैसी इस्लामिक कट्टरपंथी नेता भी साम्प्रदायिक उन्माद भड़का रहे हैं। साम्प्रदायिक माहौल और दंगों का लाभ चुनावों में हिन्दुत्ववादी कट्टरपंथियों को भी मिलेगा और साथ ही ओवैसी जैसे इस्लामिक कट्टरपंथियों को भी; इसके अलावा, कांग्रेस, सीपीआई, सीपीएम, सपा, बसपा, आप, राजद, जद (यू) जैसी तथाकथित सेक्युलर पार्टियों को भी वोटों के ध्रुवीकरण का लाभ मिलेगा। और इस तनाव के माहौल में किन लोगों की जान-माल का नुकसान होगा? आम मेहनतकश जनता का, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान!

ऐसे में हम तमाम मेहनतकश लोगों का आह्वान करते हैं कि 'अच्छे दिनों' के भरम से बाहर निकलो और आने वाले कठिन दिनों के संघर्षों के लिए ख़ुद को तैयार करें।

उठो संग्रामियो, जागो! नयी शुरुआत करने का समय फिर आ रहा है!

नया वर्ष
नयी उम्मीदों,
नयी तैयारियों,
नयी शुरुआतों के नाम,
पराजय की घड़ी में भी
विजय के स्वप्नों के नाम,
लगातार लड़ते रहने की
ज़िद के नाम
संकल्पों के नाम
जीवन, संघर्ष और सृजन
के नाम

– मज़दूर बिगुल टीम

रूस की स्त्रियाँ

महाकवि निराला की जन्मतिथि (24 जनवरी) के अवसर पर उनका लेख

रूस ने नारी जीवन में एक क्रान्ति की लहर उत्पन्न की है। बोल्शेविक क्रान्ति के पहले वहाँ स्त्रियों के साथ अत्यन्त अमानुषिकता का व्यवहार किया जाता था, उनकी दशा बड़ी ही शोचनीय थी। रूस के यार्कुटस्क प्रान्त में तो स्त्रियों के बेचने तक का व्यवसाय होता था। इस सम्बन्ध में अधिक जानकारी के लिए हम यहाँ एक प्रकाशित लेख का कुछ अंश उद्धृत करते हैं –

"रूस के यार्कुटस्क एक प्रान्त का नाम है। यह प्रान्त क्षेत्रफल के हिसाब से बहुत बड़ा हैं इसी प्रान्त में पहले स्त्रियों के बेचने का व्यवसाय होता था। स्त्रियों का मूल्य, उनकी अवस्था और सुन्दरता के अनुसार, तीस-बत्तीस पौण्ड आटा से लेकर तीस-चालीस पौण्ड मक्खन तक होता था। सुन्दर से सुन्दर स्त्रियाँ रूस के इस प्रान्त में थोड़े से दामों अथवा नाज के बदले में मोल ले ली जाती थीं। इन खरीदी हुई स्त्रियों का उनके मालिकों के ऊपर कोई अधिकार न होता था। खरीदार मालिक उन्हें स्त्री बनाता, उनसे मजदूरी करवाता और भोजन-वस्त्र देकर उनका पालन-पोषण करता था। इसके पश्चात वह खरीदार, कुछ दिनों के पीछे, जब चाहता था, उस खरीदी हुई स्त्री को बेच सकता था। उस समय, जब लड़कियाँ अपने माँ-बाप के यहाँ रहती थीं, उनको अपने जीवन का कुछ ज्ञान न होता था। वे नहीं जानती थीं कि कब, कहाँ और किसके हाथों बेच दी जायेंगी, और इस प्रकार उनको अपने माता-पिता का घर छोड़कर चला जाना पड़ेगा। लड़कियों के माता-पिता उनके सयानी होने की प्रतीक्षा करते और सयानी हो जाने पर यथासम्भव अधिक मूल्य में बेचने का प्रयत्न करते थे। इन अभागिनी लड़कियों को अपने माता-पिता के घरों में भी कुछ सुख-सन्तोष न मिलता था।"

रूस की वैवाहिक प्रथा और भी अधिक चिन्तनीय थी। लड़कियाँ अपने पिता के हाथों में कठपुतलियों की भाँति थी। उन्हें विवाह के सम्बन्ध में कोई भी अधिकार प्राप्त न था। पिता मनमाना धन लेकर जिनके साथ चाहे उनका विवाह कर देता, वे चूँ तक न कर सकती थीं। अपने वैवाहिक जीवन में उन्हें 'पति की मोल ली हुई दासी' की तरह रहना पड़ता था। खाना पकाना, पानी भरना, वस्त्र धोना, कपड़े सीना, बच्चों का पालन-पोषण करना और खेतों में काम करना–यही उनका रोज का कार्यक्रम था। सब प्रकार पति को प्रसन्न रखना उनका एकमात्र लक्ष्य था। तनिक से अपराध पर पुरुष उन्हें कड़े से कड़ा दण्ड दे सकते थे। वे कहीं भाग न सकती थीं। और, यदि भागतीं, तो पुलिस उन्हें पकड़कर पुन: पतियों के हाथों सुपुर्द कर देती थी। पुरुषों को विवाह-सम्बन्ध-विच्छेद का पूर्ण अधिकार था। वे उन्हें तनिक सी बात पर नाराज होकर त्याग सकते थे। विरोध करना तो दूर की बात, वे निगाह भी ऊपर न कर सकती थी। पुरुषों की सत्ता के सम्मुख उन्हें अपनी समस्त इच्छाओं की बलि दे देनी पड़ती थी।

इस नारकीय दाम्पत्य जीवन की दुरवस्थाओं के कारण समाज में सर्वत्र व्यभिचार बढ़ गया था–वे समाज की आँखों में धूल झोंक अपने सतीत्व को नष्ट करती थीं। व्यभिचार द्वारा उत्पन्न बच्चे नदी-नालों, तालाबों आदि जगहों पर फेंक दिये जाते थे। वेश्यालयों के अतिरिक्त कुछ ऐसे स्थान होते थे, जहाँ जवान, खूबसूरत बालिकाएँ घृणित उपायों द्वारा सतीत्व से भ्रष्ट की जाती थीं। ऐसे गुप्त संकेत स्थल 'लिटिल कैंडल क्लब' के नाम से प्रख्यात थे। जब किसी स्त्री का दुष्चरित्र प्रकट हो जाता, तो वह अपने घर से निकाल दी जाती थी, परन्तु व्यभिचारी, कामान्ध युवकों को कोई भी दण्ड न मिलता था।

रूस के इस कुत्सित, अत्याचारपूर्ण जीवन का अन्त आखिर में होकर रहा। यहाँ की भीषण बोल्शेविक राज्य क्रान्ति ने दीन-दलितों का ही उत्थान नहीं किया, वरन वहाँ की स्त्रियों में भी अभूतपूर्व जागृति उत्पन्न कर दी। आज रूस की स्त्रियों को संसार में अपना मस्तक ऊँचा करने का श्रेय प्राप्त है। उनकी नस-नस में विद्युत की सी शक्ति प्रवाहित हो चुकी है। क्रान्ति के बाद सोवियत सरकार ने स्त्री-पुरुष के समान अधिकार घोषित किये। स्त्रियों में शिक्षा प्रचार के लिए भरसक यत्न किया गया। उनमें जागृति उत्पन्न करने के लिए रूस में विभिन्न प्रकार की संस्थाएँ बनायी गयीं। अनेक पत्र-पत्रिकाओं का जन्म हुआ। उनकी शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक उन्नति के लिए व्यायामशालाओं, क्लबों तथा पुस्तकालयों का आयोजन किया गया। देहातों में भी इन सब बातों का समुचित प्रबन्ध किया गया। कुछ ही दिनों में वहाँ की स्त्रियों का जीवन नवीन प्रस्फुटित कलियों की भाँति विकसित हो उठा। शिक्षा प्राप्त स्त्रियाँ स्कूलों, दफ्तरों, कारखानों तथा अन्य स्थानों में पुरुषों के साथ-साथ समान रूप से, उत्साहित होकर काम करने लगीं। वे निर्भय तथा स्वावलम्बी होकर रहना पसन्द करने लगीं। प्रत्येक स्त्री पत्र-पत्रिकाओं का पढ़ना, भिन्न-भिन्न कार्यवाहियों में भाग लेना तथा वाचनालयों में जाना अपना अनिवार्य कार्य समझने लगी। देहात की स्त्रियों की उन्नति के लिए भी पूर्ण प्रयत्न किया गया। उनको सब प्रकार की सुविधाएँ दी गयीं। खेती की उन्नति के लिए कृषि संस्थाएँ खोली गयीं, और नागरिक सभाओं तथा शासन सम्बन्धी पंचायतों से उन्हें पूरा सहयोग प्राप्त हुआ। फलत: देहातों में भी स्त्री जीवन तथा स्त्री व्यवसायों की व्यवस्था में नवीनता प्राप्त हुई। कारखानों में काम करने वाली स्त्रियों और लड़कियों की उन्नति का भी काफी प्रयत्न किया गया। उनके लिए ट्रेड्स स्कूल खोले गये जहाँ उन्हें कारखानों के काम में विशेष योग्यता प्राप्त करने का समुचित प्रबन्ध किया गया। आजकल तो वे कारखानों में काम करने के समय में से आधा समय निकालकर इन स्कूलों में काम सीखती हैं। उन्हें छात्रवृत्ति भी मिलती है। इन सुविधाओं के कारण वे स्त्रियाँ, जो मज़दूरी करके कठिनता से ज़िन्दगी बिताती थीं, अधिक उपकृत हुईं।

सोवियत सरकार ने स्त्रियों के घरेलू जीवन में भी एक क्रान्ति पैदा की है। स्त्रियों का बहुत-सा अमूल्य समय बाल-बच्चों के पालन-पोषण में ही निकल जाता था, और वे अपने सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन को सुदृढ़ तथा समुन्नत नहीं बना सकती थीं। उनका बहुत-सा समय गार्हस्थिक चिन्ताओं में ही बीत जाता था। देश और समाज के लिए वे कुछ भी न कर सकती थीं। इस महान दोष से देश को मुक्त करने के लिए सोवियत सरकार ने बच्चों के पालन-पोषण और उनकी शिक्षा-दीक्षा का दायित्व अपने ऊपर ले लिया। महात्मा लेनिन के कथनानुसार घर तथा बाहर, दोनों ही जिम्मेदारी स्त्री-पुरुष पर समान रूप से पड़ी। स्त्रियों ने पुरुषों के समान अपने अधिकार प्राप्त किये और अब रूस के कोने-कोने में साम्यवादी सिद्धान्त का प्रभाव दिखलायी पड़ रहा है। सोवियत सरकार ने देश में ऐसे आश्रम बनाये हैं, जहाँ देश के प्रत्येक बच्चे का पालन-पोषण अत्यन्त ध्यानपूर्वक होता है। हर एक स्त्री-पुरुष अपने बच्चे को, पैदा होते ही, आश्रम में भेज देता है। वहाँ सब बच्चे स्वस्थ, निरोग, शिक्षित तथा योग्य बनाये जाते हैं। माता-पिता स्वच्छन्दतापूर्वक अपना और काम देख सकते हैं। उन्हें अपने बच्चों के लालन-पालन की कोई फिक्र नहीं करनी पड़ती। रूस की नयी सरकार इन बच्चों को देश और समाज का अंग और उनकी स्थायी सम्पत्ति समझती है। यही कारण है, रूस की शक्ति दिन पर दिन बढ़ रही है। अब कोई युवती कौमार्य अवस्था में पुत्रवती हो जाने से तिरस्कृत नहीं की जाती। उसकी वह सन्तान भी शिशुगृह में सावधानी से पाली जाती और बड़ी होने पर उसी की सन्तान कहलाती है। उसे इस भूल के लिए आजीवन कष्ट नहीं झेलना पड़ता।

रूस की वर्तमान सोवियत सरकार ने वेश्यावृत्ति को अत्यन्त गर्हित कर्म करार दिया है। वह उसके विरुद्ध बड़ा प्रबल आन्दोलन कर रही है। समाजप्रेमी स्त्री-पुरुष उसको निर्मूल करने के लिए जी-तोड़ परिश्रम कर रहे हैं। रूस में स्वास्थ्य और सदाचार के प्रसार के लिए बड़ी-बड़ी सभाएँ कायम की गई हैं। उन्हीं सभाओं के अन्तर्गत 'वेश्यावृत्ति विरोधिनी केन्द्रीय समिति' (जेम बमदजतंस बवनदबपस जव बवउइंज चतवेजपजनजपवद) की स्थापना की गयी है। इसका फल यह हुआ कि अब रूस में वेश्याओं की संख्या दिन-पर-दिन घट रही है, और वेश्यावृत्ति की भावना भी धीरे-धीरे नष्ट हो रही है।

इस प्रकार रूस में शिक्षा, सभ्यता, देशप्रेम और सदाचार का प्रचार दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है। सब स्त्री और पुरुष बिना किसी भेदभाव के सामूहिक रूप से सामाजिक तथा राष्ट्रीय नियंत्रण में दत्तचित्त हो रहे हैं। वे लोग इस मूल-मंत्र को समझ गये हैं कि–"पुरुष और स्त्री का जीवन पूर्ण स्वतंत्रता और पूर्ण सहकारिता के भावों से ओत-प्रोत है।" तात्पर्य यह कि "स्त्री-पुरुष फूल और पौधे की तरह परस्पर सम्बद्ध हैं। वे परस्पर विचारों की स्वाधीनता की निर्मल वायु में प्रेम और समुन्नति की वर्षा और धूप में ही, पनप सकते हैं।" अत: हमारी भारतीय ललनाओं का यह कर्तव्य है कि वे भी रूस की स्त्रियों की भाँति उन्नतिशील बनें और जहरीले अन्ध-परम्परा के बन्धन से मुक्ति प्राप्त कर वास्तविकता और शिक्षा की ओर अप्रतिहत वेग से अग्रसर हों, इसी में समाज तथा देश का कल्याण है।

['सुधा', मासिक, लखनऊ, जुलाई 1935 (सम्पादकीय)]

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2014-2016
प्रेषित डाकघर : आर.एम.एस. चारबाग, लखनऊ
प्रेषित तिथि : दिनांक 20 प्रत्येक माह

इस बार अरविन्द केजरीवाल और 'आम आदमी पार्टी' वाले ठेका मज़दूरों का मुद्दा क्यों नहीं उठा रहे हैं?

(क्योंकि दूध का जला छाछ भी फूँक-फूँक कर पीता है!)

दिल्ली में विधानसभा चुनावों की घोषणा हो गयी है। 7 फ़रवरी को एक बार फिर जनता से कहा जायेगा कि भाजपा, आप और कांग्रेस में से किसी एक को चुन ले। भाजपा नरेन्द्र मोदी की मीडिया-पोषित लहर और साम्प्रदायिक तनाव की नाव पर सवारी करते हुए सत्ता में पहुँचना चाहती है। लेकिन नरेन्द्र मोदी की सात माह पुरानी सरकार ने जिस नंगई और बेशर्मी के साथ देश की बड़ी-बड़ी कम्पनियों के मालिकों का पायबोस और सिजदा किया है, उससे जनता के भी अच्छे-ख़ासे हिस्से में उसकी लोकप्रियता में भारी कमी आयी है। मोदी लहर कुछ राज्यों में भाजपा की जीत तक क़ायम रही और वह भी इसलिए कि उन राज्यों में कांग्रेस की सरकार कई कार्यकाल पूरे करके अपने शरीर पर बचा आख़िरी सूत का धागा भी फेंक चुकी थी। लेकिन दिल्ली का चुनाव आते-आते साफ़ दिख रहा है कि मोदी की लहर अब नगर निगम के नाले की 'छप-छप' में बदल गयी है! कांग्रेस और भाजपा अम्बानियों, अदानियों, टाटाओं, जिन्दलों, मित्तलों की पार्टी है, ये तो जनता के सामने बार-बार उजागर हो चुका है। लेकिन पिछले दिल्ली चुनावों में 'आम आदमी पार्टी' के तौर पर एक नयी पार्टी का उदय हुआ। पहले ही चुनाव 29 सीट जीतकर 'आप' ने सबको चौंका दिया था। इस पार्टी ने जनता के हर हिस्से को लुभाने वाला एजेण्डा पेश किया था। इसमें छोटे और बड़े पूँजीपतियों को भरोसा दिलाया गया था कि उनके लिए धन्धा लगाना और चलाना आसान बना दिया जायेगा; मज़दूरों को बोला गया था कि ठेका मज़दूरी ख़त्म कर दी जायेगी; दुकानदारों को आश्वासन दिया गया था कि उन पर से वैट कर का बोझ कम कर दिया जायेगा; और पूरे मध्यवर्ग को जनलोकपाल बनाकर भ्रष्टाचार का सर्वनाश कर डालने का सपना दिखलाया गया था। ज़ाहिर है, अगर कोई पार्टी मज़दूर वर्ग को ठेका प्रथा से मुक्ति दिलाने और पूँजीपतियों को अधिक मुनाफ़ा कमाने की छूट देने का वायदा करती है, तो वह लोगों को उल्लू बना रही है। आम आदमी पार्टी ने भी पिछले चुनावों में ज़्यादा सीट के लालच में हर किसी को एक लॉलीपॉप दे दिया था। लेकिन असली फ़ायदा तो सिर्फ़ दिल्ली के दुकानदारों, ठेकेदारों और पूँजीपतियों को दिया गया था! इसीलिए 49 दिनों में ही केजरीवाल ने दुकानदारों, ठेकेदारों आदि को सरकारी बाधाओं (लाइसेंस और इंस्पेक्टर राज) से छुटकारा देना और एक हद तक निम्न मध्यवर्ग को लुभाने वाले कुछ कार्य शुरू कर दिये थे। लेकिन मज़दूरों को केजरीवाल सरकार लगातार ठेंगा दिखलाती रही!

पहले डीटीसी के ठेका कर्मचारियों ने केजरीवाल को याद दिलाया कि उसने ठेका प्रथा ख़त्म करने का वायदा किया था और अब जबकि वह मुख्यमन्त्री बन गया है, तो उसे ठेका प्रथा समाप्त करने का क़दम उठाना चाहिए; इसके बाद होमगार्डों ने ठेका प्रथा ख़त्म करने की माँग की; फिर दिल्ली मेट्रो रेल कारपोरेशन के ठेका मज़दूरों ने केजरीवाल के दरवाज़े पर दस्तक दी और स्थाई नौकरी की माँग की। लेकिन केजरीवाल सरकार टालती रही और मज़दूरों से मिलने तक से इंकार कर दिया। इसके बाद, दिल्ली मज़दूर यूनियन के आह्वान पर 6 फ़रवरी 2014 को हज़ारों ठेका मज़दूरों ने दिल्ली सचिवालय का घेराव किया और केजरीवाल सरकार के श्रम मन्त्री गिरीश सोनी को जवाबतलब किया। श्रम मन्त्री ने मज़दूरों को साफ़ शब्दों में बताया कि केजरीवाल सरकार ठेका मज़दूरी के उन्मूलन के लिए कुछ नहीं कर सकती क्योंकि इससे मालिकों, प्रबन्धन और ठेकेदारों को नुक़सान होगा! 6 फ़रवरी को ठेका मज़दूरों द्वारा घेरे जाने के बाद केजरीवाल को समझ में आ चुका था कि वह अपने वायदों को पूरा कर ही नहीं सकता। बिजली के बिल कम करने के लिए भी केजरीवाल ने जनता के पैसों से सब्सिडी देने की व्यवस्था की जिसे बहुत समय तक चलाया भी नहीं जा सकता था; अपने तमाम वायदों से मुकरने के कारण केजरीवाल 49 दिनों बाद जनलोकपाल बिल के मसौदे को उपराज्यपाल के पास न भेजने की ज़िद को लेकर अड़ गया और अन्त में इस्तीफ़ा देकर भाग खड़ा हुआ, हालाँकि 49 दिनों के शासन में उसने अन्य क़ानूनी संशोधनों को उपराज्यपाल के पास अनुमोदन हेतु भेजा था! ख़ैर, केजरीवाल को मज़दूरों-मेहनतकशों से वोट पाने के लिए किये गये झूठे वायदों का कँटीला ताज अपने सिर से उतार कर भागना था, सो वह भाग खड़ा हुआ।

इसके बाद, ऐसा लगता है कि योगेन्द्र यादव, प्रो. आनन्द कुमार आदि जैसे लोहियावादी या जेपीवादी समाजवादियों ने केजरीवाल को थोड़ा समझाया है! उसको बताया है कि "देखो भाई केजरू! दिल्ली में सिर्फ़ मिडिल क्लास और लोवर मिडिल क्लास वालों को चुगद बनाने से काम चल जायेगा! इसलिए इस बार मुफ़्त वाई-फ़ाई-इण्टरनेट, बिजली के बिल कम करने और पानी फ़्री करने का वायदा करो! मज़दूरों को मत छेड़ो! वो सोते हुए शेर हैं, जग गये तो फिर भागना पड़ेगा!" तो मज़दूर वर्ग के इन ग़द्दारों की सलाह पर अमल करते हुए केजरीवाल ने इस बार मज़दूरों से कोई वायदा ही नहीं किया! केजरीवाल ने पूँजीवादी राजनीति का पहला सबक़ सीख लिया है: असली वायदे मिडिल क्लास से करो! मज़दूरों से खोखले वायदे करो और वह भी ठोस शब्दों में नहीं, हवा-हवाई शब्दों में! साथ ही, केजरीवाल ने एक और सबक़ लिया है! पिछली बार उसने उछल-उछलकर गला फाड़ा था कि 50 प्रतिशत चुनावी वायदे वह दो महीने में पूरे कर देगा! डेढ़ महीने बीतने पर जब वह 5 प्रतिशत वायदे भी नहीं पूरे कर पाया तो उसे समझ में आया कि भारत की जनता भुलक्कड़ तो है, लेकिन इतनी भुलक्कड़ भी नहीं है कि चुनावी नेताओं के वायदों को दो महीने में भूल जाये! इसलिए वायदे भुलाने के लिए अगली बार थोड़ा ज़्यादा समय लेना पड़ेगा! इसीलिए केजरीवाल इस बार अपने न पूरे किये जा सकने वाले वायदों के लिए पूरे 5 साल का वक़्त माँग रहा है! हम भारतवासी तो 'सन्तोषम् परम् सुखम्' में भरोसा करते हैं और हममें ग़ज़ब का धैर्य होता है! और तो और हम भूलने की कला में भी माहिर हैं और 'जाहि बिधी रखे राम, ताहि बिधी रहना' पर विश्वास रखते हैं! ऐसे में, आम आदमी पार्टी के केजरीवाल जैसे (अभि)नेताओं के लिए बड़ी आसानी हो जाती है! लेकिन हम मज़दूरों को कभी नहीं भूलना चाहिए।

दिल्ली में करीब 50 लाख ठेका मज़दूर हैं! और उन 50 लाख ठेका मज़दूरों के लिए सबसे बड़ा मुद्दा क्या है? ठेका प्रथा का उन्मूलन! यानी कि किसी भी नियमित प्रकृति के काम पर (यानी जो ज़रूरत पड़ने पर गाहे-बगाहे न होकर रोज़ नियमित तौर पर होता हो) ठेका मज़दूरों को रखने की पूरी मनाही होनी चाहिए! दिल्ली राज्य में ऐसा क़ानून पास किया जाना चाहिए जोकि इस बात को सुनिश्चित करता हो कि नियमित काम पर ठेका प्रथा समाप्त होनी चाहिए और अन्य कार्यों पर लगने वाले ठेका और कैजुअल मज़दूर को वे सारे हक़ मिलने चाहिए जोकि 'ठेका मज़दूर क़ानून, 1971' के तहत दर्ज किये गये हैं। भाजपा और कांग्रेस तो ऐसा वायदा भी नहीं करने वाली हैं, क्योंकि उन्हें तो चुनावी चन्दा ही टाटा, बिड़ला, अम्बानी, अदानी की तिजोरी से मिलता है। आम आदमी पार्टी छोटे मालिकों, ठेकेदारों और दुकानदारों से पैसे लेकर चुनाव लड़ती है और साथ ही कुछ चन्दा ये जनता से भी बटोरती है। इसीलिए कम-से-कम उसने ठेका मज़दूरों से 'पलभर के लिए कोई हमें प्यार कर ले, झूठा ही सही' के तर्ज़ पर झूठा वायदा कर दिया कि ठेका प्रथा ख़त्म कर देंगे! लेकिन यह झूठा वायदा भी उस पर भारी पड़ गया! और यही कारण है कि टटपुँजिया वर्ग का मफ़लरधारी, खाँसी-पीड़ित सेनापति केजरीवाल इस बार मज़दूरों से कोई झूठा वायदा भी नहीं कर रहा है!

हम मज़दूरों को न सिर्फ़ कांग्रेस और भाजपा जैसे पूँजीपतियों के टुकड़खोरों को पहचानना चाहिए बल्कि केजरीवाल जैसे झूठों-पाखण्डियों को भी पहचानना चाहिए जिनका जन्म एनजीओ राजनीति और बदबूदार लोहियावादियों के हमबिस्तर होने से हुआ है। बल्कि कहना चाहिए कि इन राजनीतिक वर्णसंकरों से मज़दूर वर्ग को सबसे ज़्यादा सावधान रहने की ज़रूरत है क्योंकि जब टटपुँजिया छोटे मँझोले वर्ग को पता चलता है कि केजरीवाल ने तो उसे टोपी पहना दी है, तो वह गुस्से में मोदी जैसे तानाशाह के समर्थन में जाता है। भारत में पिछले लोकसभा में मोदी के नेतृत्व में हिटलरों की जारज हिन्दुस्तानी सन्तानों को जो विजय मिली उसमें एक भूमिका आम आदमी पार्टी, अण्णा हज़ारे जैसे जोकरों की भी थी, जिनकी भँड़ैती में टटपुँजिया जनता कुछ समय के लिए उलझ गयी थी और जब उससे निकली तो बड़े गुस्से में थी! वास्तव में, 'आप' की राजनीति अपनी असफलता और उससे पैदा होने वाले मोहभंग के ज़रिये मोदी जैसे साम्प्रदायिक फ़ासीवादियों का ही समर्थन करती है! यही कारण है कि आम आदमी पार्टी को पिछले विधानसभा चुनावों में वोट करने वाले अधिकांश लोगों ने संसद चुनावों में मोदी को वोट दिया था। हम मज़दूरों को अपनी वर्ग दृष्टि साफ़ रखनी चाहिए और समझ लेना चाहिए कि केजरीवाल ने हमसे एक बार धोखा किया है और बार-बार धोखा करेगा जबकि भाजपा और कांग्रेस खुले तौर पर हमें ठगते आये हैं! इनके हत्थे चढ़ने की गलती करने की बजाय हमें अपना रास्ता खुद बनाना चाहिए। केजरीवाल की राजनीति वह सड़ाँध मारती नाली है जो अन्त में मोदी नामक बड़े गन्दे नाले में जाकर मिलती है!

– अन्तरा घोष

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधीपुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006